रवीन्द्रनाथ टैगोर की श्रेष्ठ कहानियां

नोबल
पुरस्कार
विजेता

विश्व-कवि
रवीन्द्रनाथ टैगोर
की श्रेष्ठ कहानियां
जिन्होंने उन्हें
अमर कीर्ति दी।

हिन्द पॉकेट बुक्स

Digitized by the Internet Archive
in 2024

https://archive.org/details/ravindranaththak0000unse

रवीन्द्रनाथ टैगोर की श्रेष्ठ कहानियां

हिन्द पॉकेट बुक्स

श्रेष्ठ/लोकप्रिय कहानियां सीरीज़

- प्रेमचंद की ज़ब्तशुदा कहानियां
- प्रेमचंद की श्रेष्ठ कहानियां (सचित्र)
- प्रेमचंद की मशहूर कहानियां (सचित्र)
- प्रेमचंद की श्रेष्ठ बाल कहानियां (सचित्र)
- शरत्चन्द्र की श्रेष्ठ कहानियां
- रवीन्द्रनाथ ठाकुर की लोकप्रिय कहानियां
- रवीन्द्रनाथ टैगोर की श्रेष्ठ कहानियां
- रवीन्द्रनाथ टैगोर की श्रेष्ठ बाल कहानियां
- बंगला की सर्वश्रेष्ठ कहानियां
- उर्दू की श्रेष्ठ कहानियां
- ख़लील जिब्रान की उत्कृष्ट कहानियां
- विश्व की क्लासिक कहानियां
- संसार की सर्वश्रेष्ठ कहानियां
- अनातोले फ़्रांस की कहानियां

हिन्द पॉकेट बुक्स

देश-भर के प्रमुख रेलवे, रोडवेज व अन्य बुक स्टालों से लें, न मिलने पर हमें लिखें।

जे-40, जोरबाग लेन, नई दिल्ली-110003

रवीन्द्रनाथ टैगोर की श्रेष्ठ कहानियां

हिन्द पॉकेट बुक्स

हिन्द पॉकेट बुक्स
भारत की सर्वप्रथम पॉकेट बुक्स

उत्कृष्ट साहित्य का प्रतीक
सुन्दर • सुरुचिपूर्ण • सरल

रवीन्द्रनाथ टैगोर की श्रेष्ठ कहानियां
© सर्वाधिकार सुरक्षित
अनुवाद : धन्यकुमार जैन
प्रथम संस्करण : 2003
पहला रिप्रिंट : 2004
दूसरा रिप्रिंट : 2006
तीसरा रिप्रिंट : 2007
चौथा रिप्रिंट : 2008
पांचवां रिप्रिंट : 2010
छठां रिप्रिंट : 2012
प्रकाशक : हिन्द पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड
जे-402, जोरबाग़ लेन, नई दिल्ली-110003
टाइपसेटिंग : स्कैनसेट, नई दिल्ली-110003
मुद्रक : यश प्रिंटोग्रॉफिक्स, बी-123, सेक्टर-10, नोएडा-201301

RABINDRANATH TAGORE KI SHRESHTHA KAHANIYAN
By Rabindranath Tagore

ISBN 13: 978-81-216-0934-0
ISBN 10: 81-216-0934-8
03/12/07/11/20/SCANSET/SAP/YP/YP/OP075/NP095

जीवन-वृत्त

मानवीय सभ्यता के इतिहास में कुछ ऐसी प्रतिभाएं भी होती हैं, जिन्हें देशकाल की सीमाएं बांध नहीं पातीं। ऐसी प्रतिभाओं का परिचय चिरन्तन विश्व की व्यापकता में ही मिलता है, रवीन्द्रनाथ ठाकुर ऐसी ही एक प्रतिभा थे। वे केवल भारत के ही नहीं सारे संसार के कवि हैं, विश्व-मानव के कवि, कविनां कवितमः, लेकिन वे केवल कवि ही नहीं, कथाकार, उपन्यासकार, नाटककार, निबन्धकार और चित्रकार भी हैं।

7 मई सन् 1861 को कलकत्ता के विख्यात ठाकुर परिवार में रवीन्द्रनाथ का जन्म हुआ था। इनके पिता का नाम महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर था। बचपन में उनकी पढ़ाई घर में शुरू हुई। बाद में कुछ समय के लिए लन्दन यूनिवर्सिटी कॉलेज में उन्होंने अध्ययन किया। बारह-तेरह वर्ष की अवस्था से ही रवीन्द्रनाथ ने कविता लिखनी शुरू की। प्रारम्भिक रचनाओं में 'बनफूल' तथा 'कवि-काहिनी' (1871) उल्लेखनीय हैं। उनके काव्य की मूलधारा की शुरुआत 'सन्ध्या संगीत' (1882) से होती है। रवीन्द्रनाथ ने यह अवश्य कहा कि वे 'जन्म रोमांटिक' हैं, परन्तु उन्होंने यह कहना कभी नहीं भूला कि वे इस पृथ्वी को छोड़कर कहीं नहीं जाना चाहते। वे बाकी सबके साथ ही जीना चाहते हैं।

मरिते चाहिना आमि सुन्दर भुवने,
मानवेर माझे आदि बांचिबारे चाइ।

'कड़ि और कोमल' (1886), 'प्रभात संगीत' (1883), 'छबि ओगान'

(1884), 'मानसी' (1890) में उनकी प्रारम्भिक कवि-दृष्टि का क्रम-विकास स्पष्ट है। 'सोनार तरी' (1894) काव्य-ग्रन्थ में विश्व-जीवन की आनन्द चेतना का पहला स्वर फूटता है। 'चित्रा' (1896) में यह परिणति प्राप्त करती है। इसी समय 'नैवेद्य' (1901) काव्य-संग्रह में भक्ति के लिए कवि की व्याकुलता प्रकट हुई। यह व्याकुलता 'गीतांजलि' (1910) में अनाविल भक्तिरस से अभिषिक्त हो उठती है। सन् 1913 में भारत की विदेशी सरकार ने उन्हें नाइट (सर) की उपाधि प्रदान की, परन्तु सन् 1920 में पंजाब के जलियांवाला बाग के निर्मम हत्याकांड से मर्माहत होकर उन्होंने नाइट की उपाधि वापिस कर दी। शिक्षा के क्षेत्र में उनके योगदान को शान्तिनिकेतन के माध्यम से जाना जाता है। प्राचीन भारतीय शिक्षा-पद्धति के आधार पर विश्वभारती विश्वविद्यालय की स्थापना हुई थी। लक्ष्य था, एक ऐसे विश्वविद्यालय का निर्माण, जहां विश्व एक नीड़ के समान बस सके।

इसी बीच सन् 1916 में उनका 'बलाका' काव्य-संग्रह प्रकाशित हुआ। भावैश्वर्य और शिल्पनैपुण्य से परिपुष्ट इस काव्य-संग्रह में विश्व के विवर्तन अथवा गति की रहस्यकथा प्रकट हुई है। इसके उपरान्त प्रकाशित काव्य-ग्रन्थों में 'पलातका' (1918), 'पूरबी' (1925), 'प्रवाहिनी' (1925), 'शिशु भोलानाथ' (1932), 'महुआ' (1929), 'वनवाणी' (1931), 'परिशेष' (1932), 'पुनश्च' (1932), 'वीथिका' (1934), 'पत्रपुट' (1936) आदि उल्लेखनीय हैं। 'पूरबी' (1925) में जीवन की अपराहन-बेला में जो शेष रागिणी बज उठी थी 'आरोग्य' (1941) तथा 'शेषलेखा' (1941) में मृत्यु के पदशब्द के साथ उसी की आवाज हमें सुनाई पड़ती है। मृत्युपथ यात्री की विचित्र अभिज्ञता से युक्त ये कविताएं संसार की श्रेष्ठ कविताओं में हैं। अवसन्न चेतना की गोधुलि-बेला में कालिन्दी के काले स्रोत में कवि अपनी देह को अपनी अनुभूतियों तथा विचित्र-वेदना के साथ बहते देखता है। इसी विचित्र वेदना के भीतर ही उनकी प्रार्थना वाणी उच्चारित हुई है। मानो जीवन-मृत्यु के सन्धि-क्षण में खड़े कवि अपने जीवन की

चरम उपलब्धि-सीमा के साथ असीम की एकात्मा को भूल नहीं पाए हैं :

> **हे पूषन, तुमने अपनी किरणें समेट ली थीं। अब उसको फिर से फैलाओ, जिससे मैं तुम्हारे कल्याणतम रूप को देख सकूं और एक ब्रह्म की उपलब्धि कर सकूं।**

पद्य की तरह गद्य की भी रचना रवीन्द्रनाथ ने बचपन से ही शुरू कर दी थी। उनके निबन्ध उनके शिल्पकार्य के ही उदाहरण हैं, जिनमें विचारों की गम्भीरता के साथ भावावेग की दीप्ति भी स्पष्ट है। उनका श्रेष्ठ गद्य-ग्रन्थ 'जीवनस्मृति' (1912-13) है। यह इतिहास नहीं स्मृति के पट पर कवि के द्वारा अंकित जीवन के कुछ चित्र हैं। सन् 1888 में रवीन्द्रनाथ ने आधुनिक बंगला साहित्य में छोटी कहानी की सृष्टि करके एक नई महत्त्वपूर्ण विधा को प्रतिष्ठित किया। सन् 1884 में उनका पहला उपन्यास 'करुणा' प्रकाशित हुआ। रवीन्द्रनाथ के प्रसिद्ध उपन्यासों में 'चोखेर बाली' (1903), 'नौका डूबी' (1906), 'गोरा' (1909) आदि उल्लेखनीय हैं। नाटक के क्षेत्र में 'बाल्मीकि प्रतिभा' (1881), 'मायेर खेला' (1888) उनके प्रारम्भिक गीति-नाट्य हैं। स्वर के धागे में हृदयावेग को पिरो देना ही इन नाटकों का उद्देश्य रहा है। 'राजा ओ रानी' (1889), 'विसर्जन', (1890) तथा 'चित्रागंदा' (1892) में उनकी नाट्य-प्रतिभा अपनी पूरी शक्ति के साथ प्रकट हुई है। उनका सांकेतिक नाटक 'रक्तकरबी' (1926) उनकी श्रेष्ठ कृतियों में एक है। काव्य, स्वर, नाट्य तथा नृत्य के चतुरंग प्रवाह से युक्त उनके नृत्य नाटक 'नटीर पूजा' (1926), 'श्यामा' (1939) आदि उनकी बहुमुखी प्रतिभा के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। मानव जीवन में ऋतु-क्रम का प्रभाव तथा प्रतिक्रिया दिखाने के लिए उन्होंने 'शारदोत्सव' (1908), 'राजा' (1910), 'अचलायतन' (1912), 'फाल्गुनी' (1916) आदि नाटक लिखे।

जीवन के अन्तिम दिनों में उन्होंने चित्र बनाना शुरू किया। इनमें युग का संशय, मोह, क्लान्ति, निराशा का स्वर आदिम भावावेग के साथ

प्रकट हुआ। परन्तु यह उनके जीवन की अन्तिम बात नहीं थी। नए युग के नए जीवन-बोध को उन्होंने सहर्ष ग्रहण किया, किन्तु क्षणकाल के लिए भी उनका मन संशयान्वित नहीं हुआ। काव्य-रचना के पहले दिन से अन्तिम दिन तक परिचित उपनिषद् का मन्त्र ही उनका पाथेय बना रहा, इसीलिए तो आधुनिक युगबोध की बात करनेवालों के सम्मुख उन्होंने निःसंकोच होकर कहा, 'मैंने जीर्ण जगत में जन्म ग्रहण नहीं किया।' हालांकि नए का आह्वान करने में उन्होंने कभी संकोच नहीं किया।

7 अगस्त 1941 में उनकी मृत्यु हुई। मृत्यु से कुछ दिन पहले चिकित्सा के लिए उन्हें शान्तिनिकेतन से कलकत्ता स्थानान्तरित किया गया था। शान्तिनिकेतन से चलते हुए उनके नातिन ने उन्हें कहा था, 'दादाजी, आपको मालूम है, हमारे यहां नया पावर हाउस बन रहा है।' इसके उत्तर में उन्होंने कहा था, 'हां पुराना आलोक चला जाएगा, नए का आगमन होगा।'

अनुक्रम

काबुलीवाला	11
पोस्टमास्टर	22
लल्ला बाबू की वापसी	30
दृष्टिदान	41
देन-लेन	70
दुलहिन	80
सजा	85
व्यवधान	99
स्वर्ण मृग	105
अतिथि	119

काबुलीवाला

मेरी पांच बरस की छोटी लड़की मिनी से क्षण-भर भी बात किए बिना नहीं रहा जाता। संसार में जन्म लेने के बाद भाषा सीखने में उसने एक ही साल लगाया था। उसके बाद से, जब तक वह जागती रहती है, उस समय का एक भी क्षण वह खामोश रहकर नष्ट नहीं करती। उसकी मां कभी-कभी धमकाकर उसका मुंह बन्द कर देती है, पर मैं ऐसा नहीं कर पाता। मिनी अगर खामोश रहे, तो वह ऐसी अजीब-सी लगती है कि मुझसे उसकी चुप्पी ज्यादा देर तक सही नहीं जाती। सही कारण यही है कि उसके साथ मेरी बातचीत कुछ ज्यादा उत्साह के साथ चलती है।

सबेरे मैं अपने उपन्यास का सत्रहवां अध्याय लिखने जा ही रहा था कि मिनी ने आकर शुरू कर दिया, "बाबू, रामदयाल दरबान काका को कौवा कह रहा था। वह कुछ नहीं जानता। है न बाबा?"

संसार की भाषाओं की विभिन्नता के बारे में मैं उसे कुछ ज्ञान देनेवाला ही था कि उसने दूसरा प्रसंग छेड़ दिया, "सुनो बाबू, भोला कह रहा था कि आसमान से हाथी सूंड़ से पानी बिखेरता है, तभी बारिश होती है। ओ मां! भोला झूठमूठ ही इतना बकता है! बस बकता ही रहता है, दिन-रात बकता रहता है, बाबू।"

इस बारे में मेरी राय के लिए जरा-सा इन्तजार किए बिना वह अचानक पूछ बैठी, "क्यों बाबू, अम्मा तुम्हारी कौन लगती है?"

मैंने मन-ही-मन कहा, 'साली' और मुंह से कहा, "मिनी, तू जा, जाकर

भोला के साथ खेल। मुझे अभी काम करना है।”

वह मेरी लिखने की मेज के पास मेरे पैरों के निकट बैठ गई और दोनों घुटने और हाथ हिला-हिलाकर, फुर्ती से मुंह चलाते हुए रटने लगी, “आगडुम-बगडुम घोड़ा-डुम साजे।” उस समय मेरे उपन्यास के सत्रहवें अध्याय में प्रतापसिंह कंचनमाला को लेकर अंधेरी रात में कारागार की ऊंची खिड़की से नीचे नदी के पानी में कूद रहे थे।

मेरा कमरा सड़क के किनारे था। यकायक मिनी ‘अक्को-बक्को तीन तिलक्को’ खेल छोड़कर खिड़की के पास दौड़कर पहुंची और जोर से पुकारने लगी, “काबुलीवाला! ओ, काबुलीवाला!”

गन्दे-से ढीले कपड़े पहने, सिर पर पगड़ी बांधे, कन्धे पर झोली लटकाए और हाथ में अंगूर की दो-चार पिटारियां लिए एक लम्बा-सा काबुली धीमी चाल से सड़क पर जा रहा था। उसे देख मेरी बिटिया रानी के मन में कैसे भाव जगे होंगे, यह बताना मुश्किल है, पर वह जोर-जोर से उसे पुकार रही थी। मैंने सोचा, अभी कन्धे पर झोली लटकाए एक आफत मेरे सिर पर आ सवार होगी और मेरा सत्रहवां अध्याय समाप्त होने से रह जाएगा।

लेकिन मिनी की पुकार पर, जैसे ही काबुली ने हंसकर अपना चेहरा घुमाया और मेरे घर की ओर आने लगा, वैसे ही मिनी जान छुड़ाकर अन्दर की ओर भागी और लापता हो गई। उसके मन में एक अन्धविश्वास-सा जम गया था कि झोली ढूंढ़ने पर मिनी जैसे दो-चार जीवित इनसान मिल सकते हैं।

काबुली ने आकर हंसते हुए सलाम किया और खड़ा रहा। मैंने सोचा, हालांकि प्रतापसिंह और कंचनमाला दोनों की दशा बड़े संकट में है, फिर भी इस आदमी को घर बुलाकर कुछ न खरीदना ठीक नहीं होगा।

कुछ चीजें खरीदीं। उसके बाद इधर-उधर की चर्चा भी होने लगी। अब्दुल रहमान से रूस, अंग्रेज, सीमान्त-रक्षा-नीति पर बातें होती रहीं।

अन्त में उठते समय उसने पूछा, “बाबूजी, तुम्हारी लड़की कहां गई?”

मिनी के मन से बेकार का डर दूर करने के इरादे से उसे भीतर से बुलवा लिया। वह मुझसे सटकर खड़ी हो गई। सन्देह-भरी नजरों से वह काबुली का चेहरा और उसकी झोली की ओर देखती रही। काबुली ने झोली से किशमिश और खुबानी निकालकर देना चाहा, पर उसने किसी तरह से नहीं लिया। दुगुने सन्देह के साथ वह मेरे घुटनों से चिपकी रही। पहला परिचय इसी तरह हुआ।

कुछ दिनों बाद, एक सवेरे किसी जरूरत से घर के बाहर निकला तो देखा, मेरी बिटिया दरवाजे के पास बेंच पर बैठी बेहिचक बातें कर रही है। काबुली उसके पैरों के पास बैठा मुस्कुराता हुआ सुन रहा है और बीच-बीच में प्रसंग के अनुसार अपनी राय भी खिचड़ी भाषा में जाहिर कर रहा है। मिनी के पांच साल की उम्र के अनुभव में 'बाबू' के अलावा ऐसा धैर्यवाला श्रोता शायद ही कभी मिला हो। फिर देखा, उसका छोटा-सा आंचल बादाम, किशमिश से भरा हुआ है। मैंने काबुली से कहा, "इसे यह सब क्यों दिया? ऐसा मत करना।" इतना कहकर जेब से एक अठन्नी निकालकर उसे दे दी। उसने बेझिझक अठन्नी लेकर झोली में डाल ली।

घर लौटकर देखा, उस अठन्नी को लेकर बड़ा हो-हल्ला शुरू हो चुका था।

मिनी की मां एक सफेद चमचमाता गोलाकार पदार्थ हाथ में लिए डांटकर मिनी से पूछ रही थी, "तुझे अठन्नी कहां से मिली?"

मिनी ने कहा, "काबुलीवाला ने दी है।"

उसकी मां बोली, "काबुलीवाले से तूने अठन्नी ली क्यों?"

मिनी रुआंसी-सी होकर बोली, "मैंने मांगी नहीं, उसने खुद ही दे दी।"

मैंने आकर मिनी को उस पास खड़ी विपत्ति से बचाया और बाहर ले आया।

पता चला कि काबुली के साथ मिनी की यह दूसरी मुलाकात ही हो ऐसी बात नहीं। इस बीच वह रोज आता रहा और पिस्ता-बादाम की

रिश्वत देकर मिनी के मासूम लोभी हृदय पर काफी अधिकार जमा लिया।

इन दोनों मित्रों में कुछ बंधी-बंधाई बातें और परिहास होता रहा। जैसे रहमान को देखते ही मेरी लड़की हंसती हुई उससे पूछती, "काबुलीवाला! ओ, काबुलीवाला! तुम्हारी झोली में क्या है?"

रहमान एक बेमतलब नकियाते हुए जवाब देता, "हाथी।"

यानी उसकी झोली के भीतर हाथी है, यही उनके परिहास का सूक्ष्म-सा अर्थ था। अर्थ बहुत ही सूक्ष्म हो, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता, फिर भी इस परिहास में दोनों को बड़ा मजा आता। सर्दियों की भोर में एक सयाने और एक कम उम्र बच्ची की सरल हंसी मुझे भी बड़ी अच्छी लगती।

उन दोनों में एक बात और चल रही थी। रहमान मिनी से कहता, "खोखी[1], तुम कभी 'ससुराल' मत जाना, हां!"

बंगाली परिवार की लड़कियां बचपन से ही 'ससुराल' शब्द से परिचित हो जाती हैं, लेकिन हम लोगों ने थोड़ा आधुनिक होने के कारण मासूम बच्ची को ससुराल के बारे में सचेत नहीं किया था। इसलिए रहमान की बातों का मतलब वह साफ-साफ नहीं समझ पाती थी, लेकिन बात का कोई जवाब दिए बिना चुप रह जाना, उसके स्वभाव के बिल्कुल विरुद्ध था। वह पलटकर रहमान से पूछ बैठती, "तुम ससुराल जाओगे?"

रहमान काल्पनिक ससुर के प्रति अपना बहुत बड़ा घूंसा तानकर कहता, "हम ससुर को मारेगा।"

यह सुनकर मिनी 'ससुर' नाम के किसी अजनबी प्राणी की दुर्दशा की कल्पना कर खूब हंसती।

सर्दियों के उजले दिन थे। प्राचीनकाल में इसी समय राजा लोग दिग्विजय करने निकलते थे। मैं कलकत्ता छोड़कर कहीं नहीं गया। शायद इसीलिए

---

[1]. बाङ़ला शब्द 'खुकी' (मुन्नी) का विकृत रूप।

मेरा मन संसार-भर में घूमा करता है। जैसे मैं अपने घर के ही कोने में हमेशा से बसा हुआ हूं। बाहर की दुनिया के लिए मेरा मन सदा बेचैन रहता है। किसी देश का नाम सुनते ही मन वहीं दौड़ पड़ता है। किसी विदेशी को देखते ही मेरा मन फौरन नदी-पहाड़-जंगल के बीच एक कुटिया का दृश्य देख रहा होता है। उल्लास से भरे स्वतन्त्र जीवन का एक चित्र कल्पना में जाग उठता है।

इधर मैं भी इतना सुस्त प्रकृति यानी कुन्ना किस्म का हूं कि अपना कोना छोड़कर जरा बाहर निकलने में ही सिर पर बिजली गिरने-सा अनुभव होने लगता है। इसीलिए सवेरे अपने छोटे कमरे में मेज के सामने बैठकर काबुली से गप्पे लड़ाकर बहुत कुछ सैर-सपाटे का उद्देश्य पूरा कर लिया करता हूं। दोनों ओर ऊबड़-खाबड़, दुर्गम, जले हुए, लाल-लाल ऊंचे पहाड़ों की माला, बीच में संकरे रेगिस्तानी रास्ते और उन पर सामान से लदे ऊंटों का काफिला चल रहा है। पगड़ी बांधे सौदागर और मुसाफिरों में कोई ऊंट पर तो कोई पैदल चले जा रहे हैं, किसी के हाथ में बरछी है तो किसी के हाथ में पुराने जमाने की चकमक पत्थर से दागी जानेवाली बन्दूक। काबुली अपने मेघ गर्जन से स्वर में, खिचड़ी भाषा में अपने वतन के बारे में सुनाता रहता और यह चित्र मेरी आंखों के सामने काफिलों के समान गुजरता चला जाता।

मिनी की मां बड़े ही शंकुल स्वभाव की है। रास्ते पर कोई आहट होते ही उसे लगता कि दुनिया-भर के शराबी मतवाले होकर हमारे ही घर की ओर भागते चले आ रहे हैं। यह दुनिया हर कहीं चोर-डाकू, शराबी, सांप, बाघ, मलेरिया, सुअरों, तिलचट्टों और गोरों से भरी हुई है, यही उसका खयाल है। इतने दिनों से (हालांकि बहुत ज्यादा दिन नहीं) दुनिया में रहने के बावजूद उसके मन से यह भय दूर नहीं हुआ।

खासतौर से रहमान काबुली के बारे में वह पूरी तरह निश्चिन्त नहीं थी। उस पर खास नजर रखने के लिए वह मुझसे बार-बार अनुरोध करती थी। मैं उसके सन्देह को हंसकर उड़ा देने की कोशिश करता, तो

वह मुझसे एक-एक कर कई सवाल पूछ बैठती, "क्या कभी किसी का लड़का चुराया नहीं गया? क्या काबुल में गुलामी-प्रथा चालू नहीं है? एक लम्बे-चौड़े काबुली के लिए, क्या एक छोटे-से बच्चे को चुराकर ले जाना बिलकुल असम्भव है?"

मुझे मानना पड़ा कि यह बात बिलकुल असम्भव तो नहीं, पर विश्वास योग्य भी नहीं है। विश्वास करने की शक्ति हरेक में समान नहीं होती, इसीलिए मेरी पत्नी के मन में डर बना ही रह गया। लेकिन सिर्फ इसीलिए बिना किसी दोष के रहमान को अपने घर में आने से मैं मना नहीं कर सका।

हर साल माघ के महीनों में रहमान अपने मुल्क चला जाता है। इस समय वह अपने रुपयों की वसूली में बुरी तरह फंसा रहता है। घर-घर दौड़ना पड़ता है, फिर भी वह एक बार मिनी से आकर मिल ही जाता है। देखने में लगता है, जैसे दोनों में कोई साजिश चल रही हो। जिस दिन सवेरे नहीं आ पाता, उस दिन देखता हूं कि वह शाम को आया है। अंधेरे कमरे के कोने में उस ढीला-ढाला कुर्ता-पायजामा पहने झोली-झिंगोली-वाले लम्बे-तगड़े आदमी को देखकर सचमुच मन में अचानक एक आशंका-सी होने लगती है। लेकिन जब मैं देखता हूं कि मिनी 'काबुलीवाला, काबुलीवाला' कहकर हंसते-हंसते दौड़ आती और अलग-अलग उम्र के दो मित्रों में पुराना सहज परिहास चलने लगता है, तो मेरा हृदय ख़ुशी से भर उठता।

एक दिन सवेरे में अपने छोटे कमरे में बैठा अपनी किताब के प्रूफ देख रहा था। सर्दियों के दिन खत्म होने से पहले, आज दो-तीन दिन से कड़ाके की ठंड पड़ रही थी। चारों ओर सबके दांत किटकिटा रहे थे। खिड़कियों के रास्ते धूप आकर मेज के नीचे मेरे पैरों पर पड़ रही थी। यह सेंक मुझे बड़ी सुहावनी लग रही थी। सुबह के करीब आठ बजे होंगे। गुलूबन्द लपेटे सवेरे सैर को निकलनेवाले लोग अपनी सैर समाप्त कर घर लौट रहे थे। इसी समय सड़क पर बड़ा शोरगुल सुनाई पड़ा।

देखा, हमारे रहमान को दो सिपाही बांधे चले आ रहे हैं और उसके

पीछे-पीछे तमाशबीन लड़कों का झुंड चला आ रहा है। रहमान के कपड़ों पर खून के दाग हैं और एक सिपाही के हाथ में खून से सना हुआ छुरा है। मैंने दरवाजे से बाहर जाकर सिपाहियों से पूछा कि मामला क्या है।

कुछ उस सिपाही से और कुछ रहमान से सुना कि हमारे पड़ोस में एक आदमी ने रहमान से उधार में एक रामपुरी चादर खरीदी थी। कुछ रुपये अब भी उस पर बाकी थे, जिन्हें देने से वह मुकर गया। इसी पर बहस होते-होते रहमान ने उसे छुरा भोंक दिया।

रहमान उस झूठे आदमी के प्रति तरह-तरह की गन्दी गालियां बक रहा था कि इतने में 'काबुलीवाला, ओ काबुलीवाला' पुकारती हुई मिनी घर से निकल आई।

क्षण-भर में रहमान का चेहरा उजली हंसी से खिल उठा। उसके कन्धे पर आज झोली नहीं थी, इसलिए झोली के बारे में दोनों मित्रों की पुरानी चर्चा न छिड़ सकी। मिनी आते ही एकाएक उससे पूछ बैठी, "तुम ससुराल जाओगे?"

रहमान ने हंसकर कहा, "वहीं तो जा रहा हूं।"

उसे लगा उसके इस जवाब से मिनी मुस्कुराई नहीं। तब उसने हाथ दिखाते हुए कहा, "ससुर को मारता, पर करूं क्या, हाथ बंधे हैं।"

संगीन चोट पहुंचाने के जुर्म में रहमान को कई साल की कैद की सजा हो गई।

उसके बारे में मैं धीरे-धीरे भूल ही गया। हम लोग जब अपने-अपने घरों में प्रतिदिन के कामों में लगे हुए आराम से दिन गुजार रहे थे, तब पहाड़ों पर आजाद घूमनेवाला आदमी जेल की दीवारों में कैसे साल पर साल गुजार रहा होगा, यह बात कभी हमारे मन में नहीं आई।

चंचल हृदय मिनी का व्यवहार तो और भी शर्मनाक था, यह बात उसके बाप को भी माननी पड़ेगी। उसने बड़े ही बेलौस ढंग से अपने पुराने मित्र को भुलाकर पहले तो नबी सईस के साथ दोस्ती कर ली, फिर धीरे-धीरे जैसे-जैसे उसकी उम्र बढ़ने लगी, वैसे-वैसे दोस्तों के बदले एक

के बाद एक सहेलियां जुटने लगीं। यहां तक कि अब यह अपने बाबू के लिखने के कमरे में भी नहीं दिखलाई देती। मैंने भी एक तरह से उसके साथ कुट्टी कर ली है।

कितने ही वर्ष बीत गए। फिर सर्दियां आ गईं। मेरी मिनी की शादी तय हो गई। दुर्गापूजा की छुट्टी में ही उसका ब्याह हो जाएगा। कैलाशवासिनी पार्वती के साथ-साथ मेरे घर की आनन्दमयी भी पिता का घर अंधेरा कर पति के घर चली जाएगी।

बड़े ही सुहावने ढंग से आज सवेरे सूर्योदय हुआ है। बरसात के बाद सर्दियों की नई धुली हुई धूप ने जैसे सुहागे में गलाए हुए साफ और खरे सोने का रंग अपना लिया है। कलकत्ता के गलियारों में आपस में सटी-टूटी ईंटोंवाली गन्दी इमारतों पर भी इस धूप की चमक ने एक अनोखी सुन्दरता बिखेर दी है।

हमारे घर पर सवेरा होने से पहले से ही शहनाई बज रही है। मुझे लग रहा है, जैसे वह शहनाई मेरे सीने में पसलियों के भीतर रोती हुई बज रही है। उसका करुण भैरवी राग जैसे मेरे सामने खड़ी बिछोह की पीड़ा को जाड़े की धूप के साथ दुनिया-भर में फैलाए दे रहा हो। आज मेरी मिनी का ब्याह है।

सवेरे से ही बड़ा शोर-शराबा और लोगों का आना-जाना शुरू हो गया। आंगन में बांस बांधकर शामियाना लगाया जा रहा है, मकान के कमरों में और बरामदे पर झाड़ लटकाए जाने की टन-टन सुनाई पड़ रही है। गुहार-पुकार का तो कोई अन्त ही नहीं।

मैं अपने पढ़ने-लिखनेवाले कमरे में बैठा खर्च का हिसाब लिख रहा था कि रहमान आकर सलाम करते हुए खड़ा हो गया।

शुरू में मैं उसे पहचान न सका। उसके पास वह झोली नहीं थी। उसके वे लम्बे पट्टेदार बाल नहीं थे और न चेहरे पर चमक थी। अन्त में उसकी मुस्कुराहट देखकर उसे पहचान गया।

"क्यों रहमान, कब आए?" मैंने पूछा।

उसने कहा, "कल शाम ही जेल से छूटा हूं।"

यह बात मेरे कानों ने जैसे जोर से टकराई। किसी कातिल को मैंने कभी अपनी आंखों से नहीं देखा था। इसे देखकर मेरा अन्तःकरण विचलित-सा हो गया। मेरी इच्छा होने लगी कि आज इस शुभदिन पर यह आदमी यहां से चला जाए, तो बहुत अच्छा हो।

मैंने उससे कहा, "आज हमारे घर एक जरूरी काम है। मैं उसी में लगा हुआ हूं, आज तुम जाओ।"

सुनते ही वह जाने को तैयार हुआ, लेकिन फिर दरवाजे के पास जा खड़ा हुआ और कुछ संकोच से भरकर बोला, "एक बार खोखी को नहीं देख सकता क्या?"

शायद उसके मन में यही धारणा थी कि मिनी अभी तक वैसी ही बनी हुई है। या उसने सोचा था कि मिनी आज भी वैसे ही पहले की तरह 'काबुलीवाला, काबुलीवाला' पुकारती भागती हुई आ जाएगी और उसकी हंसी-भरी अद्भुत बातों में किसी तरह का कोई फर्क नहीं आएगा। यहां तक कि पहले की मित्रता की याद कर वह एक पिटारी अंगूर और कागज के दोने में थोड़ा किशमिश-बादाम शायद किसी अपने वतनी दोस्त से मांग-मूंगकर ले आया था। उसकी पहलेवाली झोली उसके पास नहीं थी।

मैंने कहा, "आज घर पर काम है। आज किसी से मुलाकात न हो सकेगी।"

वह कुछ उदास-सा हो गया। स्तब्ध खड़ा मेरी ओर एकटक देखता रहा, फिर 'सलाम बाबू' कहकर दरवाजे से बाहर निकल गया।

मेरे हृदय में एक टीस-सी उठी। सोच रहा था कि उसे बुला लूं कि देखा, वह खुद ही चला आ रहा है।

नजदीक आकर उसने कहा, "ये अंगूर, किशमिश और बादाम खोखी के लिए ले आया हूं, उसको दे दीजिएगा।"

सब लेकर मैंने दाम देना चाहा, तो उसने एकाएक मेरा हाथ पकड़ लिया, कहा, "आपकी बड़ी मेहरबानी है बाबू, हमेशा याद रहेगी। मुझे

पैसा न दें...। बाबू, जैसी तुम्हारी लड़की है, वैसी मेरी भी एक लड़की वतन में है। मैं उसकी याद कर तुम्हारी खोखी के लिए थोड़ा-सा मेवा हाथ में लिए चला आता था। मैं यहां कोई सौदा बेचने नहीं आता।"

इतना कहकर उसने अपने ढीले-ढाले कुर्ते के अन्दर हाथ डालकर एक मैला-सा कागज निकाला और बड़े जतन से उसकी तहें खोलकर दोनों हाथ से उसे मेज पर फैला दिया।

मैंने देखा, कागज पर एक नन्हे-से हाथ के पंजे की छाप है। फोटो नहीं, तैलचित्र नहीं, सिर्फ हथेली में थोड़ी-सी कालिख लगाकर उसी का निशान ले लिया गया है। बेटी की इस नन्ही-सी याद को छाती से संजोए रहमान हर साल कलकत्ता की गलियों में मेवा बेचने आता था, जैसे उस नाजुक नन्हे हाथ का स्पर्श उसके बिछोह से भरे चौड़े सीने में अमृत घोले रहता था।

देखकर मेरी आंखें भर आईं। फिर मैं यह भूल गया कि वह एक काबुली मेवावाला है और मैं किसी ऊंचे घराने का बंगाली। तब मैं यह अनुभव करने लगा कि जो वह है, वही मैं भी हूं, वह भी बाप है और मैं भी। उसकी पर्वतवासिनी नन्हीं पार्वती के हाथ की निशानी ने ही मेरी मिनी की याद दिला दी। मैंने उसी वक्त मिनी को बाहर बुलवाया। घर में इस पर बड़ी आपत्ति की गई, पर मैंने एक न सुनी। ब्याह की लाल बनारसी साड़ी पहने, माथे पर चन्दन की अल्पना सजाए दुल्हन बनी मिनी लाज से भरी मेरे पास आकर खड़ी हो गई।

उसे देखकर काबुली पहले तो सकपका-सा गया, अपनी पुरानी बातें दोहरा न सका। अन्त में हंसकर बोला, "खोखी, तुम ससुराल जाओगी?"

मिनी अब ससुराल शब्द का मतलब समझती है। उससे पहले की तरह जवाब देते न बना। रहमान का सवाल सुनकर शर्म से लाल हो, मुंह फेरकर खड़ी हो गई। काबुली से मिनी के पहले दिन की मुलाकात मुझे याद आ गई। मन न जाने कैसा व्यथित हो उठा।

मिनी के चले जाने के बाद एक लम्बी सांस लेकर रहमान वहीं जमीन

पर बैठ गया। अचानक उसके मन में एक बात साफ हो गई कि उसकी लड़की भी इस बीच इतनी ही बड़ी हो गई होगी और उसके साथ भी उसे नए ढंग से बातचीत करनी पड़ेगी। वह उसे फिर से पहलेवाले रूप में नहीं पाएगा। इन आठ वर्षों में न जाने उसका क्या हुआ होगा। सवेरे के वक्त सर्दियों की उजली कोमल धूप में शहनाई बजने लगी और कलकत्ता की एक गली में बैठा हुआ रहमान अफगानिस्तान के मेरुपर्वतों का दृश्य देखने लगा।

मैंने उसे एक बड़ा नोट निकालकर दिया, कहा, "रहमान, तुम अपने वतन अपनी बेटी के पास चले जाओ। तुम दोनों के मिलन-सुख से मेरी मिनी का कल्याण होगा।"

यह रुपया दान करने के बाद मुझे विवाहोत्सव की दो-चार चीजें कम कर देनी पड़ीं। मन में जैसी इच्छा थी, उस तरह रोशनी नहीं कर सका। किले का अंग्रेजी बैंड भी नहीं मंगा पाया। घर में औरतें बड़ा असन्तोष प्रकट करने लगीं, लेकिन मंगल-ज्योति से मेरा यह शुभ आयोजन दमक उठा।

पोस्टमास्टर

नौकरी लगते ही पोस्टमास्टर को ओलापुर गांव में आना पड़ा। साधारण-सा गांव। पास ही एक नीलहे साहब की कोठी है। साहब ने ही बड़ी कोशिश से यहां नया डाकघर खुलवाया है।

हमारे ये पोस्टमास्टर कलकत्ता के रहनेवाले हैं। पानी की मछली को रेत पर डाल देने से उसकी जैसी दशा हो जाती है, इस ठेठ देहात में आकर पोस्टमास्टर की भी वही दशा हुई। एक अंधियारे अठचाले[1] में उनका दफ्तर है, जिसके पास ही एक सेहला-भरा तालाब है और उसके चारों ओर जंगल। कोठी में गुमाश्ता आदि जो कर्मचारी हैं, उन्हें किसी से मिलने-जुलने की फ़ुरसत ही नहीं और वे किसी भले आदमी से मिलने के काबिल भी नहीं हैं।

खासतौर से कलकत्ता के लड़के मिलनसार होते नहीं। किसी अपरिचित स्थान में आकर या तो वे अक्खड़ बन जाते हैं या बिल्कुल सुस्त और लजीले। इसी वजह से स्थानीय लोगों से उनका मेल-जोल नहीं हो पाता। इधर हाथ में काम-काज भी कुछ ज्यादा नहीं है। कभी-कभी वे दो-एक कविताएं लिखने की कोशिश करते हैं। इन कविताओं में वे ऐसा भाव व्यक्त करते हैं, जैसे दिन-भर पेड़-कोंपलों का कम्पन और आकाश के बादल देखकर ही जीवन बड़े सुख से बीता जा रहा हो, लेकिन अन्तर्यामी जानते हैं कि अगर 'अलिफलैला' का कोई देव आकर इन डाली-कोंपलों

---

[1]. आठ छप्परों से बनी झोंपड़ी।

के साथ सारे पेड़ों को काटकर पक्की सड़क बना देता और बड़ी-बड़ी इमारतें आकाश के बादल को आंखों से ओट कर रख देता, तो इस अधमरे भले आदमी के लड़के को फिर नया जीवन मिल जाता।

पोस्टमास्टर की तनख्वाह बहुत कम है। खुद खाना पकाकर खाना पड़ता है और गांव की अनाथ लड़की उनका काम-काज कर देती है। इसके बदले उसे दो जून कुछ खाने को मिल जाता है। लड़की का नाम है रतन। उम्र बारह-तेरह साल की। ब्याह की कोई विशेष सम्भावना दिखाई नहीं पड़ती।

शाम को, जब गांव की गोशालाओं से घना धुआं कुंडली बनाकर ऊपर उठता, झाड़ियों में झींगुर बोलने लगते, दूर गांव के नशेबाज गवैयों की टोली मृदंग-करताल बजाकर ऊंची आवाज में गाना शुरू कर देती, तब अंधेरे चबूतरे पर बैठे-बैठे वृक्षों का कम्पन देखते हुए कवि के हृदय में भी धड़कन होने लगती। उस घड़ी घर के कोने में एक छोटा-सा दीया जलाकर पोस्टमास्टर पुकारते, "रतन!" रतन दरवाजे पर बैठी इसी पुकार का इन्तजार किया करती थी, लेकिन एक ही पुकार पर भीतर न आती, कहती, "क्या है बाबू, काहे बुलाते हो?"

पोस्टमास्टर "क्या कर रही है तू?"

रतन, "अभी चूल्हा सुलगाने जाना है चौके में...।"

पोस्टमास्टर, "चौके का काम बाद में होता रहेगा। जा, जरा तमाखू तो बना ला।"

थोड़ी देर में दोनों गाल फुलाए चिलम पर फुंके मारती हुई रतन अन्दर आती।

उसके हाथ से चिलम लेकर पोस्टमास्टर झट पूछ बैठते, "क्यों रतन, तुझे अपनी मां याद आती है?" वह बड़ा लम्बा किस्सा है। कुछ याद है, तो कुछ याद नहीं। मां से ज्यादा उसका बाप उसे प्यार करता था। बाप की याद थोड़ी-थोड़ी आती है। मेहनत-मजदूरी कर शाम को बाप घर लौट आता था, उन्हीं में दो-एक सन्ध्या उसके मन पर चित्र की तरह स्पष्ट

अंकित हैं। यही बातें करते-करते रतन पोस्टमास्टर के पैरों के पास जमीन पर बैठ जाती। उसे याद आता, उसका एक छोटा भाई था। बहुत दिन पहले, बरसात के एक दिन गढ़ैया के किनारे दोनों भाई-बहिन मिलकर एक पेड़ की डाली को बंसी बनाकर झूठ-मूठ मछली शिकार करने का खेल खेले थे। बहुत-सी महत्त्वपूर्ण घटनाओं से अधिक यही बात उसे ज्यादा याद आती थी। इसी तरह बातचीत करते-करते कभी-कभी बहुत रात हो जाती और मारे आलस के पोस्टमास्टर को खाना बनाने की इच्छा न होती। सवेरे की बासी भाजी-तरकारी बची होती और चूल्हा सुलगाकर रतन दो-चार रोटी सेंक लाती। उसी से दोनों का रात का खाना हो जाता।

किसी दिन उस अठपहलू झोंपड़ी के कोने में दफ्तर की लकड़ी के बने तख्त पर बैठकर पोस्टमास्टर भी अपने घर की बात छेड़ देते। छोटे भाई, मां और दीदी की बातें और परदेस में अकेले घर में बैठे-बैठे जिनके लिए हृदय काफी व्यथित हो उठता था, उनकी बातें करने लगते। ये बातें हर घड़ी मन में उमड़ती-घुमड़ती रहती थीं, पर नीलकोठी के गुमाश्तों से नहीं कही जा सकतीं। वे ही बातें वे एक अनपढ़ छोटी लड़की से कहते चले जाते। उन्हें यह कतई असंगत न लगता। अन्त में ऐसा हुआ कि वह लड़की बातचीत के दौरान उनके घर के लोगों का मां, दीदी या दादा कहकर जिक्र करने लगी, यहां तक कि उसने अपने छोटे-से हृदय-पट पर उनके काल्पनिक चित्र भी बना लिए।

एक दिन बरसात के बादलों से मुक्त दोपहर को कुछ गर्मी-भरी सुख देनेवाली हवा चल रही थी। भीगी घास और पेड़-पौधों से धूप पड़ने के कारण एक तरह की गन्ध निकल रही थी। ऐसा लगता था जैसे थकी हुई धरती की गर्म सांस शरीर पर पड़ रही हो। न जाने कहां का एक जिद्दी पंछी इस भरी दुपहरी में प्रकृति के दरबार में अपनी सारी एकरस शिकायतें बार-बार बड़े ही करुण स्वर में दुहराता जा रहा था। पोस्टमास्टर के पास कोई काम न था। उस दिन वर्षा से धुले नर्म-चिकने पत्तोंवाले पेड़-पौधों की हिलोरें और पराजित वर्षा की धूप से उजियाले खंडहर जैसे

बादलों के स्तूप वास्तव में देखने योग्य थे। पोस्टमास्टर यही देख रहे थे और सोच रहे थे कि काश इस समय अपने पास कोई अपना सगा होता, हृदय से सटी हुई स्नेह-भरी कोई मानव-मूर्ति होती। धीरे-धीरे उसे ऐसा लगने लगा कि वह पंछी बार-बार इसी बात को दुहरा रहा है। पेड़ों की छांह में डूबी सुनसान दुपहरी को इन पत्तों की मर्मर ध्वनि का भी अर्थ कुछ-कुछ वैसा ही है। कोई विश्वास नहीं करता और जान भी नहीं पाता, लेकिन इस छोटे-से गांव के मामूली तनख्वाह पानेवाले सब-पोस्टमास्टर के मन में ऐसे ही भावों का उदय होना असम्भव नहीं है।

पोस्टमास्टर ने एक लम्बी सांस लेकर पुकारा, "रतन!" रतन उस समय अमरूद के नीचे आराम से बैठी एक कच्चा अमरूद खा रही थी। मालिक की आवाज सुनकर फौरन दौड़ती हुई आई और हांफती हुई बोली, "दादा, मुझे बुला रहे हो?" पोस्टमास्टर ने कहा, "तुझे मैं थोड़ा-थोड़ा पढ़ना सिखाऊंगा।" कहकर सारी दोपहर 'छोटा अ', 'बड़ा आ' सिखाते रहे और इस तरह थोड़े ही दिनों में उसे 'संयुक्ताक्षर' तक पढ़ा दिया।

सावन में वर्षा का कोई अन्त नहीं। ताल-तलैया, नदी-नाले सब पानी से लबालब भर गए थे। दिन-रात मेंढ़कों की टर्र-टर्र और वर्षा की झम-झम गूंजती रहती थी। गांव के रास्तों पर चलना-फिरना बन्द हो गया था। नाव पर बैठकर हाट जाना पड़ता था।

एक दिन सवेरे खूब बादल छाए हुए थे। पोस्टमास्टर की छात्रा बहुत देर तक दरवाजे के पास प्रतीक्षा में बैठी थी, किन्तु दूसरे दिनों की तरह नियमित पुकार जब देर तक नहीं सुन पड़ी, तो वह अन्त में ख़ुद ही अपनी पोथी और बस्ता लिए कमरे मे अन्दर पहुंची। देखा, पोस्टमास्टर अपनी चारपाई पर पड़े हैं। यह सोचकर कि वे आराम कर रहे हैं, उसने चुपके से बाहर निकल जाना चाहा। सहसा उसे सुनाई पड़ा, "रतन!" झट पलटकर वह बोली, "दादा, तुम सो रहे थे न?" पोस्टमास्टर ने करुण स्वर में कहा, "तबीयत कुछ अच्छी नहीं लग रही है, देख तो जरा मेरे माथे पर हाथ रखकर।"

ऐसे निपट अकेले प्रवास में, घोर वर्षा में बीमार देह जरा सेवा पाने की इच्छा करती है। गर्म माथे पर चूड़ियोंवाले गर्म हाथों का स्पर्श याद आ जाता है। इस घोर परदेस में बीमारी के कष्ट से पीड़ित हो ऐसा सोचने का जी करता है कि बगल में स्नेहमयी नारी के रूप में मां या दीदी बैठी हो। यहां इस परदेस की अभिलाषा व्यर्थ न गई। बालिका रतन अब बालिका न रही। उसी क्षण उसने जननी का स्थान ले लिया। वैद्य बुला लाई, वक्त पर दवा की टिकिया खिला दी, रात-भर सिरहाने बैठी जागती रही, खुद ही जाकर नाश्ता बना लाई और सौ-सौ बार पूछती रही, "क्यों दादा, कुछ आराम मालूम पड़ता है?"

बहुत दिनों बाद पोस्टमास्टर कमजोर शरीर लेकर रोग-शय्या से उठे। उन्होंने मन-ही-मन इरादा कर लिया कि बस, अब और नहीं, यहां से किसी भी तरह तबादला कराना ही है। इस जगह की अस्वास्थ्यकर आबोहवा का उल्लेख कर फौरन उन्होंने कलकत्ता के अधिकारियों के पास अर्जी भेज दी।

तीमारदारी से छुट्टी पाकर रतन दरवाजे के बाहर फिर अपनी जगह पर जा बैठी, लेकिन पहले की तरह उसकी बुलाहट नहीं हुई। बीच-बीच में वह झांककर देखती कि पोस्टमास्टर अनमने-से तख्त पर बैठे हैं या चारपाई पर लेटे हुए हैं। रतन जब बुलाहट की प्रतीक्षा में बाहर बैठी रहती थी, तब वह बेचैनी से अपनी दरख्वास्त के जवाब की प्रतीक्षा करते रहते। बालिका दरवाजे के बाहर बैठी अपना पुराना पाठ हजार बार पढ़ती रही। उसे डर था कि जिस दिन अचानक उसकी बुलाहट होगी, उस रोज कहीं संयुक्ताक्षरों का पाठ वह भूल गई तो? अन्त में, हफ्ते-भर के बाद एक दिन शाम को पुकार हुई। व्याकुल हृदय लिए रतन भीतर गई और बोली, "दादा, मुझे बुला रहे थे?"

पोस्टमास्टर बोले, "रतन, मैं कल ही जा रहा हूं।"

रतन, "कहां जा रहे हो दादा?"

पोस्टमास्टर, "घर जा रहा हूं।"

रतन, "फिर कब आओगे?"

पोस्टमास्टर, "फिर नहीं आऊंगा।"

रतन ने फिर कोई बात नहीं पूछी। पोस्टमास्टर ने खुद ही उससे कहा कि उन्होंने बदली की अर्जी दी थी, वह अर्जी मंजूर नहीं हुई। इसलिए नौकरी से इस्तीफा देकर घर जा रहे हैं। बहुत देर तक कोई कुछ भी न बोला। दीया टिमटिमाता रहा और एक जगह मड़ैया की पुरानी छाजन से चूकर एक मिट्टी के सकोरे में टप-टप बारिश का पानी टपकता रहा।

कुछ देर बाद रतन धीरे-से उठकर रसोई में रोटी सेंकने चली गई। दूसरे दिनों की तरह उसमें फुर्ती न थी। शायद बीच-बीच में बहुत-सी चिन्ताएं उसे आ घेरती थीं। पोस्टमास्टर का भोजन समाप्त होने पर बालिका एकाएक पूछ बैठी, "दादा, मुझे अपने घर ले चलोगे?"

पोस्टमास्टर ने हंसकर कहा, "सो कैसे हो सकता है?" किन-किन कारणों से वे उसे नहीं ले जा सकते, यह बताने की जरूरत उन्होंने न समझी।

रात-भर जागते हुए या सपने में बालिका के कानों में पोस्टमास्टर की वह हंसी गूंजती रही, सो कैसे हो सकता है?

सवेरे उठकर पोस्टमास्टर ने देखा कि उनके नहाने का पानी तैयार है। कलकत्ता की आदत के अनुसार वे बाल्टी में भरे हुए पानी से नहाते थे। कब किस वक्त वे जाएंगे, यह बात वह बालिका किसी कारण न पूछ सकी थी, इसलिए कहीं भोर-सवेरे ही जरूरत न पड़ जाए, यह सोचकर रतन रात रहते ही नदी से पानी भर लाई थी। स्नान के बाद रतन की पुकार हुई। रतन चुपचाप घर के भीतर गई और आज्ञा की प्रतीक्षा में उसने एक बार मालिक के मुंह की ओर खामोश होकर देखा। मालिक ने कहा, "रतन, मेरी जगह पर जो बाबू आएंगे, उन्हें मैं बता जाऊंगा कि तुझे मेरी ही तरह जतन से रखें। मैं जा रहा हूं, इसीलिए फिक्र मत कर।" इसमें सन्देह नहीं कि ये बातें अत्यन्त स्नेह-भरे और करुण हृदय से निकली थीं, लेकिन नारी-हृदय को कौन समझ सकता है? रतन ने बहुत

दिन तक मालिक की बहुत डांट-फटकार सही है, लेकिन ये कोमल बातें उससे नहीं सही गईं। सहसा वह फफककर रो पड़ी, बोली, "नहीं, तुम्हें किसी से कुछ कहने की जरूरत नहीं है। मैं भी नहीं रहना चाहती हूं।"

पोस्टमास्टर ने रतन का ऐसा व्यवहार कभी नहीं देखा था इसलिए विस्मित रह गए।

नया पोस्टमास्टर आया। उसे सब बातें समझाकर पुराने पोस्टमास्टर चलने की तैयारी करने लगे। जाते वक्त रतन को बुलाकर कहा, "रतन, मैं तुझे कभी क़ुछ दे नहीं सका। आज जाते वक्त तुझे कुछ दिए जा रहा हूं। इससे तेरे कुछ दिनों का काम चल जाएगा।"

अपने राह-खर्च के लिए कुछ रुपये रखकर तनख्वाह के जितने रुपये थे, जेब से सब निकालकर उसे देने लगे। रतन धूल में लोट पड़ी और उनके पैर पकड़कर बोली, "दादा, तुम्हारे पांव पड़ती हूं, पांव पड़ती हूं, मुझे कुछ देने की जरूरत नहीं। तुम्हारे पांव पड़ती हूं, मेरे लिए किसी को कुछ करने की जरूरत नहीं।" इतना कहकर वह वहां से दौड़कर चली गई।

भूतपूर्व पोस्टमास्टर ने एक गहरी सांस ली, फिर कार्पेट का बैग लटकाए, कन्धे पर छतरी रखे, मजदूर के सिर पर नीले और सफेद रंग से चित्रित टीन का बक्सा रखवाकर धीरे-धीरे घाट की ओर चल दिए।

जब वे नाव पर सवार हुए और नाव छूट गई, वर्षा में फैली हुई नदी धरती के आवेश से निकले आंसुओं की तरह चारों ओर झिलमिलाने लगी, तब हृदय में वह एक गहरी टीस का अनुभव करने लगे। एक मामूली गंवई लड़की का करुण मुखड़ा जैसे एक विश्वव्यापी बड़ी और अनकही मर्म-व्यथा बनकर उनके हृदय को व्यथित करने लगा। एक बार बड़ी इच्छा हुई कि लौट जाएं, संसार की गोद से छिटकी हुई उस अनाथ बालिका को साथ लेते आएं, लेकिन तब तक बादबान में हवा भर चुकी थी, वर्षा का प्रवाह वेग से बह रहा था, गांव पार कर नदी-किनारे श्मशान दिखाई दे रहा था और वर्षा प्रवाह पर बहते हुए मुसाफिर के उदास हृदय

में इस सत्य का उदय हो रहा था, 'जीवन में ऐसी बिछुड़नें कितनी ही और आएंगी, कितनी मौतें आती रहेंगी, इसलिए लौटने से क्या फायदा? दुनिया में कौन किसका है?'

किन्तु रतन के मन में किसी भी सत्य का उदय नहीं हुआ। वह उस पोस्ट-ऑफिस-गृह के चारों ओर केवल आंसू ढरकाती चक्कर लगा रही थी। शायद उसके मन में क्षीण आशा जाग रही थी कि दादा लौट आएं और इसी बन्धन में फंसी वह किसी तरह भी कहीं दूर नहीं जा सकती थी। हाय रे, बुद्धिशून्य मानव-हृदय! भ्रान्ति किसी तरह से भी मिटती नहीं। युक्तिशास्त्र का विधान बहुत देर में मन में बैठता है। प्रबल प्रमाण का भी अविश्वास कर, झूठी आशा को दोनों बांहों में लपेटकर अपनी छाती से चिपकाए रखा जाए, तो वह अन्त में एक दिन सारी नाड़ियों को काटकर हृदय का खून चूसकर भाग जाती है और तभी चेतना आती है। चेतना आने के बाद भी दूसरे भ्रान्तिजाल में फंसने के लिए उसका चित्त व्याकुल होता रहता है।

लल्ला बाबू की वापसी

रायचरण जब पहले-पहल नौकरी पर बहाल हुआ तब उसकी उमर थी कुल बारह साल की। जैसोर जिले में उसका घर था। लम्बे-लम्बे बाल, बड़ी-बड़ी आंखें और काली-चिकनी छरहरी देह थी उसकी। वह जाति का कायस्थ था, और उसके मालिक भी कायस्थ थे। मालिक के घर साल-भर का एक बच्चा था, उसे खिलाना-सम्हालना और घुमाना-फिराना, यही उसकी नौकरी थी।

धीरे-धीरे उस बच्चे ने रायचरण की गोद छोड़कर कालेज में और आखिर में कालेज छोड़कर मुंसिफी में कदम रखा। और रायचरण अब भी उनके यहां नौकर है। अब उसका एक मालिक और बढ़ गया है, घर में 'बहूजी' आ गई हैं। इसलिए अनुकूल बाबू पर रायचरण का पहले जितना अधिकार था, उसका अधिकांश नई गृहिणी के हाथ लग गया है।

किन्तु मालकिन ने जैसे रायचरण का पहले का हक कुछ घटा दिया है, वैसे ही एक नया हक देकर उसकी बहुत कुछ भरपाई भी कर दी है। थोड़े ही दिन हुए, अनुकूल के एक लड़का पैदा हुआ है; और रायचरण ने उसे सिर्फ अपनी कोशिश और मेहनत से जरूरत से ज्यादा अपना लिया है।

बच्चे को वह ऐसे उत्साह के साथ झूला झूलाता है, ऐसी चतुराई से उसके दोनों हाथ पकड़कर ऊपर को उछालता है, जवाब की कोई आशा न रखकर उससे ऐसे-ऐसे बेमतलब के सवाल पूछता रहता है, और उसके मुंह

के पास अपना सिर ले जाकर ऐसा हिलाया करता है कि वह नन्हा-सा आनुकौलव रायचरण को देखते ही मारे खुशी के फूलकर कुप्पा हो जाता है।

वह नन्हा-सा बच्चा जब पेट और घुटनों के बल चलकर चौखट पार होता और कोई पकड़ने आता तो खिलखिलाकर हंसता हुआ जल्दी से निरापद स्थान में दुबकने की कोशिश करता, तब रायचरण उसकी असाधारण होशियारी और अकल को देखकर आश्चर्य में पड़ जाता। उसकी मां के पास जाकर वह बड़े गर्व और आश्चर्य के साथ कहता, "बहूजी, तुम्हारा यह लड़का बड़ा होने पर 'जज' होगा, पांच हज्जार रुपये पाया करेगा!"

संसार में और भी कोई मानव-सन्तान इस उमर में चौखट पार करने आदि ऐसी-ऐसी होशियारी का परिचय दे सकती है, यह बात रायचरण के कयास के बाहर थी। उसका खयाल था कि सिर्फ भावी जजों के लिए ही ऐसी बातें सम्भव हैं, औरों के लिए नहीं।

आखिर बच्चे ने जब डगमगाते हुए चलना शुरू किया, तो वह भी बड़े आश्चर्य की बात हो गई; और जब वह मां को 'म्मा', बुआ को 'उआ' और रायचरण को 'चन्ना' कहकर पुकारने लगा, तब तो रायचरण इस अनोखे संवाद को बड़े उत्साह से चारों तरफ घोषित करने लगा।

सबसे बड़ी ताज्जुब की बात तो यह है कि मां को 'म्मा' कहता है, बुआ को 'उआ' कहता है, पर उसे कहता है 'चन्ना'! वास्तव में बच्चे के दिमाग में यह अकल आई कहां से, बतलाना कठिन है। अवश्य ही कोई ज्यादा उमर का आदमी ऐसी तेज अकल का परिचय न दे सकता था, और देने पर भी उसके 'जज' होने की सम्भावना में सबको पूरा-पूरा शक रह जाता।

कुछ दिन से रायचरण को मुंह में रस्सी दबाकर घोड़ा बनना पड़ता है। पहलवान बनकर बच्चे के साथ कुश्ती भी लड़नी पड़ती है, और उसमें अगर वह हारकर जमीन पर नहीं गिर पड़ता तो बेचारे की शामत आ जाती है।

इसी समय अनुकूल बाबू का पद्मा नदी के किनारे के किसी जिले में तबादला हो गया। वहां जाते वक्त वे अपने बच्चे के लिए कलकत्ता से एक छोटी-सी ठेलागाड़ी लेते गए थे। रायचरण सुबह-शाम दोनों वक्त नवकुमार को साटन का कुरता, सिर पर जरीदार टोपी, हाथ में सोने के कड़े और पैरों में लच्छे पहनाकर उस गाड़ी में बिठाकर हवा खिलाने ले जाता।

वर्षा ऋतु आई। भूखी पद्मा नदी खेत, बाग-बगीचे, गांव सबको एक-एक ग्रास में निगलने लगी। चर की रेती पर के पेड़-पौधे सब पानी में डूब गए। नदी के किनारे के कगारे धसकने की डरावनी आवाज और पानी की गरज से दसों दिशाएं मुखरित हो उठीं। तेजी से दौड़ती हुई फेनराशि ने नदी के तेज बहाव को और भी भयानक कर दिया।

उस दिन तीसरे पहर बादल घिर आए थे, पर बरसने की कोई सम्भावना न थी। आज रायचरण का खामखयाली नन्हा-सा मालिक किसी भी तरह घर में नहीं रहना चाहता। वह गाड़ी पर सवार होकर हवाखोरी को जाने के लिए अड़ गया। रायचरण धीरे-धीरे गाड़ी को ठेलाता हुआ खेतों के पास नदी के किनारे जा पहुंचा। नदी में एक भी नाव न थी, और खेत में भी कोई आदमी न था। बादलों की संधों में से दिखाई दिया कि उस पार सूनसान बालू-रेतवाले नदी किनारे सूने समारोह के साथ सूर्यास्त की तैयारियां हो रही हैं। उस सन्नाटे में बालक सहसा एक पेड़ की तरफ उंगली उठाकर बोल उठा, "चन्ना, फूः!"

पास ही दलदल जमीन पर एक कदम का पेड़ था, उसकी ऊंची शाखा पर कुछ फूल खिले हुए थे, उन्हीं पर बालक की लोभी दृष्टि खिंची हुई थी। तीन-चार दिन हुए, रायचरण ने सींकों में गूंथ-गूंथकर उसे एक कदम के फूलों की गाड़ी बना दी थी—उसमें रस्सी बांधकर खींचने में बच्चे को ऐसा मजा आया कि उस रोज रायचरण को मुंह में लगाम नहीं लगानी पड़ी; घोड़े से वह एकाएक साईस के पद पर चढ़ा दिया गया।

दलदल में से जाकर फूल लाने की रायचरण की इच्छा न हुई। उसने चट्-से दूसरी ओर उंगली दिखाकर कहा, "देखो, देखो, वोओ देखो, चिरैया! देखो तो, उड़ गई, आहा! आइयो री चिरैया, लल्ला बाबू को लड्डू दे जइयो!" इस प्रकार लगातार विचित्र बातें कर-करके बच्चे को बहलाता हुआ वह जोर से गाड़ी चलाने लगा।

पर जो लड़का बड़ा होकर 'जज' होगा उसे इस तरह फुसलाने की कोशिश करना व्यर्थ है, खासकर उस समय जबकि चारों तरफ ध्यान खींचनेवाली और कोई चीज ही न हो। लिहाजा रायचरण का काल्पनिक चिरैया का बहाना ज्यादा देर न टिक सका। तब फिर रायचरण ने कहा, "तो तुम गाड़ी में बैठे रहना, अच्छा! मैं चट्-से फूल लिए आता हूं। खबरदार, पानी के किनारे न जाना!" यह कहता हुआ वह धोती ऊपर चढ़ाकर कदम के पेड़ की ओर चल दिया।

किन्तु वह जो पानी के किनारे जाने को मना कर गया था उससे बच्चे का मन कदम के फूल से हटकर उसी क्षण पानी की तरफ दौड़ गया। उसने देखा कि पानी 'कलकल-छलछल' करता हुआ दौड़ा जा रहा है। उसे ऐसा लगा कि जैसे शरारत करके किसी एक बड़े रायचरण के हाथ से निकलकर एक लाख नन्हा बहाव हंसता और कलकल गीत गाता हुआ मना किए हुए स्थान की ओर तेजी से भागा जा रहा हो।

उसके इस बुरे उदाहरण से मानव-शिशु का मन खिल उठा। वह गाड़ी से उतरकर धीरे-धीरे पानी के पास पहुंचा, और एक लम्बे तिनके को उठाकर उसे मछली पकड़ने की बंसी बनाकर पानी में झुककर उससे मछली पकड़ने लगा। और, नदी का नटखट पानी फुसफुसाहट-भरी कलकल भाषा में बार-बार उसे अपने खेल में शामिल होने के लिए बुलाने लगा।

सहसा पानी में किसी चीज के गिरने की आवाज हुई। पर, बरसात में पद्मा के किनारे ऐसे कितने ही शब्द हुआ करते हैं। रायचरण ने झोली भरकर कदम फूल तोड़े, और पेड़ से उतरकर मुस्कुराता हुआ वह गाड़ी

के पास पहुंचा। वहां जाकर देखता है तो बच्चा नदारद! चारों तरफ अच्छी तरह निगाह दौड़ाकर देखा, पर कहीं भी किसी का चिह्न तक न दिखाई दिया। क्षण-भर में रायचरण का खून बरफ हो गया। सारी दुनिया उसे सूनी, उदास और धुआंधार दीखने लगी। वह अपने टूटे हुए हृदय से चीख उठा, "लल्ला बाबू, लल्ला बाबू!"

किन्तु 'चन्ना' कहकर किसी ने जवाब नहीं दिया, शरारत करके किसी बच्चे का कंठ खिलखिला नहीं उठा। सिर्फ पद्मा ही पहले की तरह 'कलकल-छलछल' करके दौड़ती रही। मानो वह कुछ जानती ही नहीं! मानो उसे दुनिया की इन सब छोटी-छोटी बातों पर ध्यान देने की फुरसत ही नहीं।

जब शाम हुई तो बच्चे की बेचैन मां ने चारों तरफ आदमी दौड़ाए। लालटेन हाथ में लिए लोग नदी के किनारे पहुंचे। वहां देखा तो, रायचरण आंधी की हवा की तरह खेतों के चारों तरफ 'लल्ला बाबू', 'लल्ला बाबू' चिल्लाता हुआ भटक रहा है, उसका गला बैठ गया है।

अन्त में घर लौटकर रायचरण धड़ाम से अपनी बहूजी के पैरों पर गिर पड़ा।

उससे बार-बार पूछा गया, पर वह रो-रोकर यही कहता रहा, "कहां गया, कुछ भी पता नहीं लगा, मां!"

यद्यपि सब समझ गए कि यह काम पद्मा का ही है, फिर भी गांव के बाहर जो बनजारे ठहरे हुए थे उन पर शक हो ही गया। मां के मन में तो यह शक पैदा हुआ कि कहीं रायचरण ने ही न चुरा लिया हो! यहां तक कि वह उसे बुलाकर कहने लगी, "तू मेरे लल्ला को लौटा दे, तुझे जितने रुपये चाहिए, मैं दूंगी।"

सुनकर रायचरण ने सिर्फ माथे पर हाथ दे मारा।

अन्त में मालकिन ने उसे निकाल बाहर कर दिया।

अनुकूल बाबू ने अपनी स्त्री के मन से रायचरण के प्रति इस अन्यायपूर्ण शक को दूर करने की कोशिश की थी। उन्होंने स्त्री से पूछा

था, "रायचरण ऐसा जघन्य काम आखिर किसलिए करेगा?"

गृहिणी ने कहा, "क्यों! सोने के गहने नहीं पहने था वो!"

रायचरण देश चला गया। अब तक उसके कोई बाल-बच्चा नहीं हुआ था, और होने की कोई उम्मीद भी नहीं थी। पर होनहार की बात कि उसी साल, इतनी ज्यादा उमर में, उसकी पत्नी के एक बच्चा हुआ; और उसी में पत्नी की मृत्यु भी हो गई। अपने उस बच्चे पर रायचरण को बड़ा गुस्सा आया। उसे वह बैरी-सा दीखने लगा। उसने सोचा, यह छल करके लल्ला की जगह अपना हक जमाने आया है! सोचने लगा, मालिक के इकलौते बेटे को पानी में बहाकर खुद पुत्र-सुख का उपभोग करना उसके लिए महापाप के सिवा और कुछ नहीं। यहां तक कि रायचरण की विधवा बहन अगर न होती, तो शायद वह बच्चा दुनिया की हवा में ज्यादा दिन तक सांस भी न ले सकता था।

ताज्जुब की बात है कि उस लड़के ने भी कुछ दिन के बाद लल्ला की तरह ही चौखट पार करना शुरू कर दिया, और सब तरह की मनाहियों को न मानने में ठीक वैसी ही चतुरता दिखाने लगा! और तो क्या, उसके गले का स्वर, हंसने और रोने की आवाज बहुत कुछ उससे मिलती-जुलती है। किसी-किसी दिन रायचरण उसका रोना सुनता तो उसकी छाती सहसा धड़क उठती, उसे ऐसा लगता कि मानो उसका वह लल्ला भटक-भटककर रो रहा है।

फुलना भी, रायचरण की बहन ने अपने भतीजे का नाम रखा था फुलना, बुआ को 'उआ' कहकर पुकारने लगा। इस परिचित सम्बोधन को सुनकर एक दिन सहसा रायचरण को खयाल आया कि जरूर लल्ला ही, मेरे मोह को न छोड़ सकने की वजह से, मेरे घर आकर पैदा हुआ है।

इस विश्वास के अनुकूल कुछ न काटी जा सकनेवाली युक्तियां भी थीं। पहले तो, उसके चले जाने के बाद इतनी जल्दी उसका जन्म होना; दूसरे, इतने वर्षों बाद सहसा उसकी पत्नी के गर्भ से लड़का पैदा होना,

यह उसकी स्त्री के गुण से हरगिज नहीं हो सकता। तीसरे, यह भी उसी तरह घुटनों के बल चलता है, डगमगाता हुआ घूमता-फिरता है और बुआ को 'उआ' कहता है। जिन लक्षणों के होने से भविष्य में जज होने की सम्भावना है, उनमें से अधिकांश गुण इसमें मौजूद हैं।

तब 'बहूजी' के दिल तोड़ देनेवाले सन्देह की बात उसे सहसा याद आ गई, और बड़े आश्चर्य में आकर वह मन-ही-मन कहने लगा, 'हां, हां, मां के मन ने ठीक जान लिया था कि किसी ने उसके बच्चे को चुरा लिया है। ठीक तो है, तभी तो वह मेरे घर आकर पैदा हुआ है।' फिर, इतने दिन जो उसने बच्चे के प्रति लापरवाही रखी, उसके लिए उसे बड़ा पछतावा हुआ। बच्चे को अब वह बहुत ज्यादा चाहने और प्यार करने लगा।

अब से फुलना को वह इस तरह पालने लगा जैसे वह किसी बड़े घराने का बच्चा हो। उसके लिए वह साटन का कोट खरीद लाया, जरीदार टोपी भी ले आया, और अपनी स्त्री के गहने गलवाकर उनसे उसके लिए कड़े और लच्छे भी बनवा दिए। मुहल्ले के किसी भी लड़के के साथ वह उसे खेलने नहीं देता। रात-दिन खुद ही उसका साथी बनकर उससे खेलता रहता है। मुहल्ले के लड़के मौका पाते ही फुलना को 'नवाब का नाती' कहकर चिढ़ाया करते हैं। और गांव के लोग भी रायचरण के ऐसे पगलाए आचरण पर आश्चर्य प्रकट करने लगे हैं।

फुलना जब पढ़ने लायक हुआ तब रायचरण अपनी जमीन वगैरह सब बेच-खोचकर उसे कलकत्ता ले गया। वहां बड़ी मुश्किल से एक नौकरी तलाश करके फुलना को उसने स्कूल में भर्ती करा दिया। खुद जैसे-तैसे गुजर कर लेता, किन्तु लड़के को अच्छा खाना, बढ़िया पोशाक और अच्छी शिक्षा देने में कोई कसर न रखता। मन-ही-मन कहता, 'लल्ला बाबू, तुम मेरे मोह से मेरे घर आए हो, इसलिए तुम्हारा मैं निरादर नहीं कर सकता।'

इसी तरह बारह साल बीत गए। लड़का पढ़ने-लिखने में तेज और

देखने में भी अच्छा तगड़ा सांवले रंग का है, केश-वेश की सजावट की तरफ पूरा ध्यान रखता है, मिजाज में कुछ आरामतलबी और शौकीनी है। बाप को ठीक बाप जैसा नहीं समझता। कारण, रायचरण स्नेह करने में बाप और सेवा करने में नौकर जैसा बरताव करता है। इसके सिवा उसमें एक कमी भी थी, यह कि वह फुलना का बाप है, यह बात उसने सबसे छिपा रखी थी। जिस छात्रावास में फुलना रहता है, वहां के और सब लड़के गंवार रायचरण की हंसी उड़ाया करते हैं, और कभी-कभी पिता की गैरहाजिरी में फुलना भी उसमें शामिल हो जाया करता है। फिर भी, ममता-भरे स्वभाववाले भोले-भाले रायचरण को सभी लड़के बहुत प्यार करते हैं; फुलना भी प्यार करता है, परन्तु उसमें पिता के स्नेह की जगह अनुग्रह ही ज्यादा रहता है।

रायचरण अब बूढ़ा हो चला। उसका मालिक अब हर वक्त उसके काम-काज में दोष पकड़ता रहता है। वास्तव में उसका शरीर भी कमजोर हो चला हैं, काम में वह उतना ध्यान नहीं रख सकता, बार-बार भूल जाता है। पर जो पूरी तनखा देता है, वह बुढ़ापे का उज्र नहीं सुन सकता। इधर वह जो खेत-जोत बेचकर रुपये लाया था, वे भी सब खत्म हो चले। और फुलना भी आजकल अपने को कपड़े-लत्तों से कुछ तंग महसूस करने लगा है।

सहसा एक दिन रायचरण ने काम से छुट्टी ले ली; और फुलना को कुछ रुपये देकर बोला, "लल्ला बाबू, जरूरी काम है मुझे, कुछ दिन के लिए मैं देश जा रहा हूं।" बस, इतना कहकर वह बारासात चल दिया। अनुकूल बाबू उस समय बारासात में मुंसिफ थे।

अनुकूल बाबू के और कोई बाल-बच्चा नहीं हुआ। उनकी पत्नी अब भी उस बच्चे के गम में आंसू बहाया करती हैं।

एक दिन, शाम के वक्त अनुकूल बाबू कचहरी से लौटकर आराम कर रहे थे और उनकी पत्नी किसी साधु-महात्मा से सन्तान की कामना से

काफी कीमत देकर कोई जड़ी और आशीर्वाद खरीद रही थीं।

इतने में आंगन से आवाज आई, "जय हो बहूजी की!"

बाबू साहब बोले, "कौन है?"

रायचरण ने आकर नमस्कार किया, बोला, "मैं हूं, रायचरण।"

बूढ़े को देखकर अनुकूल का दिल पसीज गया। उसकी मौजूदा हालत के बारे में उन्होंने सैकड़ों सवाल पूछ डाले। और फिर उन्होंने रायचरण को फिर से काम पर बहाल करने की इच्छा प्रकट की।

रायचरण ने सूखी हंसी हंसकर कहा, "मैं तो सिर्फ बहूजी की असीस लेने आया हूं।"

अनुकूल बाबू उसे अपने साथ भीतर ले गए। परन्तु उसकी 'बहूजी' ने खुशी से उसका स्वागत नहीं किया।

किन्तु रायचरण ने कुछ ध्यान न देते हुए हाथ जोड़कर कहा, "बहूजी, मैंने ही तुम्हारा लड़का चुराया था। पद्मा ने नहीं, और किसी ने भी नहीं, उसका चुरानेवाला मैं ही हूं, किरतघ्नी हूं मैं, पापी हूं।"

अनुकूल बाबू कह उठे, "क्या कह रहा है तू! कहां है वह?"

"जी, मेरे ही पास है। मैं परसों यहां पहुंचा दूंगा।"

इतना कहकर रायचरण चला गया।

उस दिन रविवार था। कचहरी की छुट्टी थी। सवेरे से पति-पत्नी दोनों जने बड़ी उत्सुकता से रायचरण के आने की राह देख रहे थे।

करीब दस बजे फुलना को साथ लेकर रायचरण हाजिर हुआ।

अनुकूल बाबू की स्त्री ने लड़के से कुछ पूछताछ नहीं की, और न कुछ सोचा-विचारा ही, वे चट्-से उसे गोद में बिठाकर, छाती से चिपटाकर, मुंह चूमकर तरसे हुए नयनों से उसका मुखड़ा देखकर कभी रोती और कभी हंसती हुई बेचैन हो उठीं। दरअसल लड़का देखने में बहुत अच्छा था। उसके पहनावे में, रहन-सहन में गरीबी का कोई लक्षण ही नहीं था। मुंह पर बेहद भला दिखनेवाला, विनम्र, शर्मीला भाव देखकर अनुकूल के दिल

में भी सहसा स्नेह उमड़ आया। फिर भी उन्होंने दृढ़ता के साथ पूछा, “कोई सबूत है?”

रायचरण ने कहा, “ऐसे काम का सबूत क्या होगा, बाबू साहब? मैंने जो आपका लड़का चुराया था, इस बात को सिर्फ मैं ही जानता हूं या भगवान जानते हैं, संसार में तीसरा कोई नहीं जानता।”

अनुकूल ने सोच-समझकर तय किया कि लड़के को पाते ही उनकी पत्नी ने जिस आग्रह के साथ उसे अपना लिया है, उसे देखते हुए अब सबूत चाहना कुछ मानी नहीं रखता। जैसे भी बने भरोसा करना ही अच्छा है। इसके सिवा, और भी एक बात है, रायचरण को ऐसा लड़का मिल भी कहां से सकता है? दूसरे, इतना पुराना बूढ़ा नौकर बिना वजह उन्हें धोखा देगा ही क्यों?

लड़के से भी बातचीत करने पर यही मालूम हुआ कि बचपन से ही वह रायचरण के साथ है, और अब तक उसी को वह पिता समझता आया है; किन्तु रायचरण ने कभी उसके साथ पिता के समान व्यवहार नहीं किया, बल्कि वह नौकर जैसा बरताव करता रहा है। अन्त में अनुकूल ने मन से सन्देह दूर करके कहा, “लेकिन, रायचरण, अब तू हम लोगों की परछाईं भी न छू सकेगा।”

रायचरण ने हाथ जोड़कर गद्‌गद कंठ से कहा, “मालिक साहब, अब इस बुढ़ापे में मैं कहां जाऊंगा?”

मालकिन ने कहा, “नहीं, नहीं, रहने दो। लल्ला मेरा खुश बना रहे। इसे मैं माफ करती हूं।”

किन्तु न्यायपरायण जज अनुकूलचन्द्र ने कहा, “इसने ऐसा भयंकर कसूर किया है कि इसे माफ नहीं किया जा सकता।”

रायचरण ने अनुकूल बाबू के पैर पकड़कर कहा, “मैंने कुछ नहीं किया, बाबू साहब, भगवान ने किया है।”

अपना पाप ईश्वर के सिर मढ़ने की कोशिश करते देख जज साहब और भी ज्यादा नाराज हो उठे। बोले, “जिसने ऐसा विश्वासघात का काम

किया है, उस पर अब फिर विश्वास करना ठीक नहीं।"

रायचरण ने पैर छोड़कर कहा, "ऐसा मैं नहीं हूं, मालिक!"

"तो कौन है?"

"मेरा भाग्य।"

किन्तु, इस तरह की कैफियत से किसी उच्च शिक्षित और खासकर न्यायकर्ता दंडदाता 'जज' को भला कैसे सन्तोष हो सकता है!

रायचरण ने कहा, "संसार में मेरा और कोई भी नहीं है, मालिक!"

फुलना ने जब देखा कि वह मुंसिफ का लड़का है, रायचरण ने अब तक उसे चुरा रखा था और अपना लड़का बताकर वह उसका अपमान करता रहा है, तब उसे भी मन-ही-मन कुछ गुस्सा आया। किन्तु फिर भी उसने उदारता के साथ पिता से कहा, "पिताजी, इसे माफ कर दो। घर में अगर नहीं रखना चाहते, तो इसके लिए कुछ माहवारी बांध दो।"

इसके बाद रायचरण ने मुंह से कुछ भी न कहकर एक बार अपने इकलौते बेटे का अच्छी तरह मुंह देखा, सबको प्रणाम किया, और फिर दरवाजे से बाहर निकलकर संसार के असंख्य आदमियों में जाकर बिला गया।

महीने के अन्त में अनुकूल बाबू ने जब उसके देश के पते से कुछ रुपये भेजे तो मनीआर्डर वापस आ गया। वहां कोई था ही नहीं।

दृष्टि-दान

सुना है कि आजकल बहुत-सी भारतीय लड़कियों को अपनी कोशिश से अपने लिए पति चुनना और संग्रह करना पड़ता है। मैंने भी ऐसा ही किया है, किन्तु देवता की मदद से। मैं बचपन ही से बहुत-से व्रत-उपवास और शिव-पूजा करती आई हूं।

मैं पूरे आठ बरस की भी न हो पाई थी कि मेरा ब्याह हो गया। किन्तु शायद पहले जन्म के पाप के कारण मैं अपने अच्छे पति को पाकर भी पूरा न पा सकी। माता त्रिनयनी ने मेरी दोनों आंखें ले लीं। उन्होंने मुझे जीवन के अन्तिम क्षण तक पति को देखते रहने का सुख नहीं दिया।

बचपन से ही मेरी अग्नि-परीक्षा शुरू हुई। चौदहवां साल पूरा भी न हो पाया कि मैंने एक मरा हुआ बच्चा जना, और खुद भी लगभग मौत के पास पहुंच गई। किन्तु जीवन में जिसे दुख भोगने हैं, भला वह मर कैसे सकती है? जो दिया जलने के लिए पैदा हुआ है, उसमें तेल कम नहीं होता, वह तो रात-भर जलकर फिर बुझता है।

मरते-मरते बच तो गई, किन्तु देह की कमजोरी, मानसिक दुख या और किसी भी कारण से हो, मेरी आंखों में दर्द शुरू हो गया, और आंखें खराब होने लगीं।

मेरे पति उन दिनों डाक्टरी पढ़ रहे थे। नई विद्या सीखने के उत्साह में इलाज करने का कोई मौका हाथ लगते ही वे निहायत खुश हो जाते। मेरी आंखें खराब होने लगीं तो उन्होंने खुद ही मेरा इलाज करना शुरू कर दिया।

मेरे बड़े भाई साहब उस साल वकालत की परीक्षा देने के लिए लॉ कालेज में पढ़ रहे थे। उन्होंने एक दिन आकर मेरे पति से कहा, "तुम यह कर क्या रहे हो, भाई? कुमुद को अन्धी ही कर डालोगे क्या? किसी अच्छे डाक्टर को क्यों नहीं दिखाते?"

मेरे पति ने कहा, "अच्छा डाक्टर आकर नया इलाज क्या करेगा? दवा वगैरह तो सब मालूम ही है।"

भाई साहब को कुछ गुस्सा-सा आ गया, बोले, "तब तो फिर तुममें और तुम्हारे कालेज के प्रिंसिपल में कोई फर्क ही नहीं!"

पति ने कहा,. "तुम कानून पढ़ रहे हो, डाक्टरी का तुम क्या जानो! जब तुम ब्याह कर चुकोगे तब तुमसे मैं पूछूंगा कि तुम्हारी पत्नी की जायदाद पर अगर कोई मुकदमा चला बैठे, तो तब तुम क्या मेरी सलाह पर चलोगे?"

मैं मन-ही-मन सोच रही थी कि 'राजा-राजाओं की लड़ाई में बेचारे सिपाहियों की शामत है।' मेरे पति के साथ भइया की खटपट हो गई, पर दोनों ओर से चोट मुझ ही पर पड़ने लगी। मैंने सोचा, 'मायकेवालों ने जब मुझे दान ही कर दिया है, तब फिर मेरे बारे में क्या करना चाहिए और क्या नहीं, इन सब बातों में वे क्यों पड़ते हैं? मेरी बीमारी और तन्दुरुस्ती, मेरा सुख और दुख, सबकुछ मेरे पति का ही तो है।'

उस दिन मेरे इस मामूली-से आंख के इलाज को लेकर भाई साहब के साथ मेरे पति का मनमुटाव-सा हो गया। एक तो वैसे ही मेरी आंखों से पानी गिरता था, और फिर तो मेरी वह आंसुओं की धारा और भी बढ़ गई। इसका असल कारण मेरे पति या भाई साहब दोनों में से कोई भी न समझ पाए।

मेरे पति के कालेज चले जाने पर, एक दिन शाम को, अचानक भाई साहब आ गए डाक्टर लेकर। डाक्टर ने परीक्षा करके कहा, "सावधानी से इलाज न हुआ और इसी तरह बदपरहेजी होती रही, तो ताज्जुब नहीं कि आंखों से ही हाथ धोना पड़े।" डाक्टर ने दवा लिख दी और भाई

साहब ने उसी वक्त दवा मंगाने के लिए आदमी भेज दिया।

डाक्टर के चले जाने पर मैंने भाई साहब से कहा, "भइया, तुम्हारे मैं पैरों पड़ती हूं, मेरा जो इलाज हो रहा है उसमें तुम अब किसी तरह की रुकावट मत डालो।"

बचपन ही से मैं भाई साहब से खूब डरा करती थी। उनसे मैं इस तरह मुंह खोलकर बात कर सकी, मेरे लिए यह बड़े आश्चर्य की बात थी। किन्तु मैंने यह खूब अच्छी तरह समझ लिया था कि मेरे पति से छिपाकर भइया जो मेरा इलाज करा रहे हैं, मेरे लिए यह अशुभ के सिवा शुभ हर्गिज नहीं हो सकता। भाई साहब को भी मेरी इस ढिठाई से शायद कुछ अचम्भा हुआ। वे कुछ देर चुप रहकर, खूब सोच-विचारकर, अन्त में बोले, "अच्छा, अब मैं डाक्टर नहीं लाऊंगा। लेकिन, जो दवा मंगाई है उसे ठीक तरीके से ले लेना, फिर देखा जाएगा।"

दवा आने पर मुझे उसकी सेवन-विधि समझाकर भाई साहब चले गए।

पति के कालेज से वापस आने के पहले ही मैंने दवा की शीशी, डिबिया, फुरफुती वगैरह सब उठाकर अपने आंगन के कुएं में फेंक दीं।

भाई साहब के साथ मानो कुछ विरोध करके ही पति ने दूने उत्साह से मेरी आंखों का इलाज करना शुरू कर दिया। वे सुबह-शाम दोनों वक्त दवा बदलने लगे। आंखों पर पट्टी बांधी, चश्मा लगाया, बूंद-बूंद दवा डाली, पाउडर लगाया, बदबूदार मछली का तेल पीया, भीतर का खाया-पीया और अंतड़ियां तक सब बाहर निकल आने लगीं, उसे भी सहा। पति पूछते, "अब कैसी मालूम होती हैं?" मैं कहती, "अच्छी ही हैं, फायदा है।" और मैं भीतर से भी महसूस करने की कोशिश किया करती कि मुझे आराम हो रहा है। जब ज्यादा पानी गिरने लगता तो सोचती कि 'पानी का निकल जाना ही अच्छा है' और जब पानी गिरना बन्द हो जाता तो सोचती कि 'अब तो आराम हुआ ही समझो।'

किन्तु कुछ दिन बाद दर्द असह्य हो उठा, आंखों से धुंधला दीखने

लगा, और सिर में तो ऐसा दर्द होने लगा कि उससे मैं बहुत ही दुखी और परेशान हो गई। मेरे पति भी शायद कुछ शर्मिन्दा-से मालूम हुए। और इतने दिन बाद अब वे किस बहाने से डाक्टर बुलावें, कुछ तय न कर सके।

मैंने उनसे कहा, "भाई साहब की बात रखने के लिए एक बार किसी डाक्टर को दिखाने में हर्ज क्या है? भाई साहब नाराज हो गए हैं, इससे मेरा जी दुख पा रहा है। इलाज तो तुम्हीं करोगे, फिर भी एक डाक्टर का रहना अच्छा है।"

पति ने कहा, "तुम ठीक कह रही हो।"

और फिर, उसी दिन वे एक अंगरेज डाक्टर को बुला लाए। दोनों में अंगरेजी में क्या बातचीत हुई, सो मैं नहीं कह सकती, लेकिन इतना मैं समझ गई कि साहब ने मेरे पति को कुछ डांटा-फटकारा, और वे सिर झुकाए चुपचाप खड़े रहे।

डाक्टर के चले जाने पर, मैंने अपने पति का हाथ पकड़कर कहा, "तुम तो न जाने कहां से एक गंवार गोरे गधे को पकड़ लाए, किसी देशी डाक्टर को लाते। मेरी आंखों की बीमारी को गोरा डाक्टर क्या तुमसे भी ज्यादा समझ सकता है!"

पति ने कुछ संकोच के साथ ही कहा, "आंखों में नश्तर कराना पड़ेगा।"

मैंने जरा गुस्सा लाकर कहा, "नश्तर कराना होगा, यह तो तुम खुद ही जानते थे, सिर्फ तुमने मुझसे छिपा रखा था। तुम क्या समझते हो कि मैं नश्तर से डरती हूं?"

उनका संकोच दूर हो गया। वे बोले, "आंखों में नश्तर लगाने की बात सुनकर न डरें, मरदों में ऐसे बहादुर कितने निकलेंगे?"

मैंने मजाक में कहा, "अजी, मरदों की बहादुरी तो सिर्फ औरतों के सामने ही है!"

उसी क्षण उनके चेहरे पर फीकी गम्भीरता छा गई, बोले, "ठीक कह रही हो तुम। मरदों में सिर्फ घमंड-ही-घमंड है।"

मैंने उनकी गम्भीरता को फूंक से उड़ाते हुए कहा, "अजी, घमंड में भी तो तुम लोग औरतों से बाज़ी नहीं मार सकते। उसमें भी अन्त में हमारी ही जीत होती है।"

इस बीच में भाई साहब भी आ गए। मैंने उन्हें अकेले में ले जाकर कहा, "भाई साहब, तुम्हारे उस डाक्टर की दवा से अब तक मेरी आंखें कुछ-कुछ अच्छी हो रही थीं, पर एक दिन भूल से पीने की दवा आंखों में डालने और लगाने की दवा पी जाने से आंखों की यह हालत हो गई कि डाक्टर कहते हैं, आंखों में नश्तर लगवाना पड़ेगा।"

भाई साहब ने कहा, "मैं तो समझता था कि तेरे पति का इलाज चल रहा है। इसी से मैं गुस्से में इतने दिनों से आया नहीं।"

मैंने कहा, "नहीं तो। मैं छिपे-छिपे उसी डाक्टर की दवा ले रही थी। कहीं वे नाराज न हो जाएं, इस डर से उनसे कहा नहीं मैंने।"

'स्त्री' का जन्म लेकर इतना झूठ बोलना पड़ता है कि जिसकी हद नहीं। भाई साहब का मन भी नहीं दुखा सकती, और पति के यश को भी ज्यों-का-त्यों रखना मेरे लिए लाजिमी है। मां होकर बच्चे को भी बहलाना पड़ता है, और स्त्री होकर बच्चे के बाप को भी खुश रखना पड़ता है। उफ़, स्त्रियों के लिए इतने छल-छन्द की जरूरत होती है!

इस छल-छन्द का नतीजा यह हुआ कि अन्धी होने के पहले मैं अपने भाई और पति का मिलन देख सकी। भाई ने सोचा कि 'छिपे-छिपे इलाज करने से यह गड़बड़ी हुई', और पति ने सोचा कि 'शुरू में ही अगर वे मेरे भाई की बात मान लेते तो ऐसा होता ही क्यों!' यह सोचकर दोनों भारी दिल से भीतर-ही-भीतर क्षमाप्रार्थी-से होकर आपस में एक-दूसरे के बहुत ही करीबी हो गए। मेरे पति भाई साहब की सलाह लेने लगे, और भाई साहब भी बड़े विनय के साथ सब विषयों में मेरे पति की राय पर ही भरोसा करने लगे।

अन्त में दोनों की सलाह से एक दिन एक अंगरेज डाक्टर ने आकर मेरी बाईं आंख में नश्तर लगाया। कमजोर आंख उस नश्तर की चोट को

झेल न सकी, और उसकी रही-सही मामूली ज्योति भी सहसा जाती रही। उसके बाद बची हुई दाहिनी आंख भी धीरे-धीरे अन्धकार से ढंक गई। बचपन में ब्याह के दिन 'शुभदृष्टि' के समय जो चन्दन-चर्चित जवान मूर्ति मेरी आंखों के सामने पहले-पहल प्रकट हुई थी, मेरे लिए उस पर हमेशा के लिए परदा पड़ गया।

एक दिन मेरे प्राणनाथ ने मेरे पलंग के पास बैठकर कहा, "अब मैं तुम्हारे सामने अपनी झूठी बड़ाई न करूंगा—तुम्हारी आंखें मैंने ही ले लीं!"

मालूम हुआ, उनका गला भर आया है। मैंने दोनों हाथों से उनका दाहिना हाथ दबाकर कहा, "अच्छा किया, तुम्हारी चीज तुमने ले ली। सोचो तो जरा, अगर किसी डाक्टर के इलाज से मेरी आंखें जाती रहतीं, तो उससे मुझे क्या तसल्ली मिलती! होनहार जबकि मिटती ही नहीं, तो आंखें तो मेरी कोई बचा ही नहीं सकता था, वे आंखें तुम्हारे हाथ से गईं, मेरे अन्धेपन का सबसे बड़ा सुख तो यही है! जब पूजा के फूल घट गए थे, तो स्वयं रामचन्द्र अपने देवता को अपनी आंखें निकालकर चढ़ाने को तैयार हो गए थे। मैंने अपने देवता को अपनी दृष्टि दी है, इससे बढ़कर सौभाग्य मेरे लिए और क्या हो सकता है! तुम्हें अपनी आंखों से जब जो अच्छा लगे, मुझसे कह दिया करना, उसे मैं तुम्हारी आंखों-देखा प्रसाद जानकर मन में रख लिया करूंगी।"

मैं इतनी बातें नहीं कह सकी थी, मुंह से इस तरह की बातें शायद कही भी नहीं जा सकतीं। हां, सिर्फ इन बातों को मैं बहुत दिनों तक मन में विचारती रही हूं। बीच-बीच में ऐसी थकावट आती थी कि मेरी उस निष्ठा का तेज भी मन्द पड़ जाता। मैं अपने को वंचित, दुखित और दुर्भाग्य में जलती हुई अभागिनी समझने लगती, और तब मैं अपने मन से ये सब बातें कहला लेती। मैं अपनी इस शान्ति और भक्ति की सहायता से अपने को दुख से भी ऊंचा रखने की कोशिश करती रहती। उस दिन बातों-ही-बातों में और कुछ-कुछ चुप रहकर अपने मन के भाव

को शायद मैं उन्हें किसी तरह समझा सकी थी।

उन्होंने कहा, "कुमुद, अपनी मूर्खता से मैं जो कुछ तुम्हारा नष्ट कर चुका हूं, उसे अब मैं तुम्हें वापस नहीं दे सकता, किन्तु जहां तक मेरा बस चलेगा, तुम्हारी आंखों की कमी दूर करने के लिए मैं हमेशा तुम्हारे साथ-साथ रहूंगा।"

मैंने कहा, "यह कोई काम की बात नहीं हुई। तुम अपनी घर-गृहस्थी को अन्धों का अस्पताल बना रखोगे, यह मैं हरगिज न होने दूंगी। तुम्हें दूसरा ब्याह करना ही होगा।"

किसलिए दूसरा ब्याह करना जरूरी है, इस बात को विस्तार से कहने के पहले ही मेरा गला रुक-सा आया। जरा खांसकर, जरा कुछ सम्हालकर, मैं कुछ कहना ही चाहती थी कि इतने में मेरे पति ठंडी सांस छोड़ने के साथ बोल उठे, "मैं मूर्ख हूं, किन्तु दम्भी नहीं हूं, कुमू! मैंने अपने हाथों से अन्धा बनाया है तुम्हें, उस पर सिर्फ अन्धी होने की वजह से तुम्हें छोड़कर अगर मैं दूसरा ब्याह करूं, तो अपने इष्टदेव गोपीनाथ की सौगन्ध खाकर कहता हूं, मैं ब्रह्म-हत्या और पितृ-हत्या के पाप का पातकी होऊं।"

इतनी बड़ी सौगन्ध उन्हें मैं हरगिज न खाने देती, उन्हें मैं बीच ही में रोक देती; किन्तु, मेरे आंसू उस समय छाती फाड़कर, कंठ दबाकर, आंखों में आकर झरना चाहते थे, मैं उन्हें रोकने में ही लगी हुई थी, मुंह से कुछ निकाल ही न सकी। उन्होंने जो कुछ कहा, उसे सुनकर मैं परम आनन्द के और चरम सुख के बहाव से तकिये में मुंह छिपाकर रोने लगी। मैं अन्धी हूं, फिर भी वे मुझे नहीं छोड़ेंगे! दुख की तरह मुझे अपने हृदय में छिपा रखेंगे! इतना सुहाग, इतना सौभाग्य मैं नहीं चाहती, पर मन जो स्वार्थी ठहरा!

अन्त में, आंसुओं की पहली वर्षा जोरों से हो चुकने के बाद, उनके मुंह को अपनी छाती के पास लाकर मैंने कहा, "ऐसी कड़ी सौगन्ध क्यों खाई तुमने? हाय-हाय मैंने क्यों तुम्हें अपने सुख के लिए ब्याह करने को कहा था! सौत से मैं अपना मतलब साधती। आंखों की कमी से तुम्हारा

जो काम मुझसे न होता वह काम मैं उससे करा लेना चाहती थी।"

उन्होंने कहा, "काम तो दासी भी कर देती है, कुमू! मैं क्या अपने काम के सुभीते के लिए एक दासी के साथ ब्याह करके उसे अपनी इस देवी के साथ एक आसन पर बिठा सकता हूं!" यह कहते हुए उन्होंने मेरा मुंह उठाकर मेरे माथे पर एक चुम्बन रख दिया। उस चुम्बन ने मानो मेरा तीसरा नेत्र खोल दिया। मानो उसी क्षण मेरा देवी के रूप में अभिषेक हो गया। मैंने मन-ही-मन कहा, 'यही अच्छा है। जब अन्धी ही हो चुकी हूं, तो बाहर की इस घर-गृहस्थी की गृहिणी ही क्यों बनी रहूं! अब तो मैं उससे भी ऊपर रहकर, देवी होकर, पति का मंगल करूंगी। अब झूठ नहीं, छल नहीं, गृहिणी-रमणी के जितने भी छोटेपन हैं, जितने भी छल-छन्द हैं, सबको दूर करके, भीतर से, बाहर से बिल्कुल पवित्र हो जाना है मुझे।'

उस दिन, दिन-भर अपने ही साथ मेरा एक तरह का विरोध चलता रहा। कठिन प्रतिज्ञा में बंधकर मेरे पति हरगिज दूसरा ब्याह न कर सकेंगे, इसका आनन्द भीतर-ही-भीतर मानो मेरे दिल को काटता रहा। उसे किसी भी तरह छुड़ाकर अलग न कर सकी। आज मेरे अन्दर जिस नई देवी ने जन्म लिया है, उसने कहा, 'शायद ऐसा भी दिन आ सकता है कि जब प्रतिज्ञा पालने की अपेक्षा ब्याह करने से तुम्हारे पति का ज्यादा मंगल हो सकता है।' किन्तु मेरे अन्दर जो पुरानी औरत थी, उसने कहा, 'इससे क्या, जबकि वे प्रण कर चुके हैं, तब तो ब्याह कर ही नहीं सकते।' देवी बोली, 'पर इसमें तुम्हारे ख़ुश होने की तो कोई वजह नहीं।' मानवी ने कहा, 'सब समझती हूं, पर जबकि वे प्रतिज्ञा कर चुके हैं, तो फिर'... इत्यादि। बार-बार वही एक ही बात! तब फिर देवी ने कुछ नहीं कहा, वह चुप बनी रही, उसने भौंहें चढ़ा लीं। किसी एक भयंकर आशंका के अंधेरे से मेरा सारा मन छा गया।

मेरे दुखी स्वामी, नौकर-नौकरानियों से मेरा काम करने की मनाही करके, ख़ुद ही मेरा सब काम करने लगे। जरा-जरा-सी बात के लिए इस

तरह पति पर निर्भर रहना, पहले तो अच्छा ही लगने लगा। कारण, इसी बहाने उन्हें हर वक्त अपने पास पाती। आंखों से मैं उन्हें देख नहीं सकती थी, इसलिए हमेशा उन्हें अपने पास पाने की हवस बहुत ज्यादा बढ़ गई। पति के चेहरे का जो हिस्सा मेरी आंखों को मिला था, उसे अब अन्य इन्द्रियां आपस में बांटकर अपना हिस्सा बढ़ा लेने की कोशिश करने लगीं। फिर ऐसा हो गया कि मेरे पति अगर बहुत देर तक बाहर किसी काम के लिए चले जाते, तो ऐसा मालूम होता कि जैसे मैं बिल्कुल शून्य में हूं, और अपने चारों तरफ टटोलती फिरती हूं, फिर भी मुझे कहीं भी कुछ मिल नहीं रहा है; मानो मेरा सबकुछ खो गया हो। पहले, पति जब कालेज जाते थे तब मैं उनके आने में देर होती तो सड़क की तरफ की खिड़की को जरा खोलकर उसकी संध में से उनकी राह देखा करती थी। जिस दुनिया में वे घूमा-फिरा करते थे उस दुनिया को मैंने अपनी आंखों से अपने साथ बांध रखा था, पर आज मेरा दृष्टिहीन सारा शरीर उन्हें ढूंढ़ने की कोशिश करता रहता है। उनकी दुनिया के साथ मेरी दुनिया का जो पुल बंधा हुआ था, आज वह टूट गया है। अब, उनके और मेरे बीच एक गहरी 'अन्धता की खाई' है—अब मुझे केवल निरुपाय बेचैनी के साथ बैठा रहना पड़ता है कि 'कब वे अपने उस पार से मेरे इस पार आकर मुझसे मिलें।' इसलिए अब, जब वे क्षण-भर के लिए भी मुझे छोड़कर चले जाते हैं तो मेरा सारा अन्धा शरीर उद्यत होकर उन्हें पकड़ना चाहता है, हाय-हाय करके उन्हें पुकारने लगता है।

किन्तु इतनी आकांक्षा, इतनी चाह, इतना आसरा-भरोसा तो अच्छा नहीं होता। एक तो वैसे ही पति पर पत्नी का भार काफी होता है, उस पर अपने इस अन्धेपन का भारी बोझ उन पर लादना ठीक नहीं। अपनी इस दुनिया में फैले अन्धकार को मैं अकेली ही झेलूंगी, अकेली ही ढोऊंगी। मैंने एकाग्र मन से यही प्रतिज्ञा की कि अपनी इस अनन्त अन्धता की रस्सी से पति को मैं अपने साथ बांधकर हरगिज नहीं रखूंगी।

थोड़े ही दिनों में केवल शब्द-गन्ध-स्पर्श से ही मैंने अपना सारा काम

करना सीख लिया। यहां तक कि बहुत-से घर के काम तो मैं पहले से भी ज्यादा चुस्ती के साथ करने लगी। और बाद में तो ऐसा मालूम होने लगा कि दृष्टि हमारे काम में जितनी सहायता पहुंचाती है, उससे कहीं ज्यादा हमें विक्षिप्त कर देती है। जितना देखने से भलाई होती है, आंखें उससे बहुत ज्यादा देखा करती हैं। और, आंखें जब पहरा देने का काम करती हैं, कान तब आलसी हो जाते हैं, जितना उन्हें सुनना चाहिए उससे वे कम ही सुनते हैं। अब चंचल आंखों की अनुपस्थिति में मेरी और सब इन्द्रियां अपना कर्तव्य शान्ति के साथ पूरा पालन करने लगीं।

अब मैं अपने पति को अपना कोई काम नहीं करने देती, बल्कि उनका सारा काम फिर मैं पहले की तरह ही करने लगी।

स्वामी ने मुझसे कहा, "मेरे प्रायश्चित्त से तुम मुझे दूर कर रही हो।"

मैंने कहा, "तुम्हारा प्रायश्चित्त कैसा, सो तो मुझे नहीं मालूम—किन्तु अपने पाप का भार मैं क्यों बढ़ाऊं?"

मुंह से चाहे वे कुछ कहें, मैंने जब उन्हें छुटकारा दिया, तो वे सांस लेकर मानो जी-से गए।

उसके बाद, मेरे पति डाक्टरी पास करके मुझे साथ लेकर कलकत्ते के बाहर देहात में चले गए। गांव में जाकर ऐसा मालूम हुआ जैसे मैं मां की गोद में पहुंच गई होऊं। आठ बरस की उमर में गांव छोड़कर कलकत्ता आई थी। इसी बीच दस बरस में जन्मभूमि मेरे मन के अन्दर छाया की तरह धुंधली हो चली थी। जब तक आंखें थीं, कलकत्ता शहर मेरे चारों तरफ मेरी समूची यादों को अपनी ओट में छिपाए खड़ा था। आंखों के जाते ही मैं समझ गई कि कलकत्ता सिर्फ आंखों को बहलाए रखनेवाला शहर है, और बचपन का वह गांव अंधियारी रात के चमकते हुए तारे की तरह मेरे मन में उजला हो उठा।

अगहन के अन्त में हम लोग हासिमपुर पहुंच गए। नई जगह थी। चारों तरफ कैसा दृश्य है, मैं कुछ देख न सकी; किन्तु बचपन के गांव की उस गन्ध ने, उन अनुभूतियों ने मेरी सारी देह जकड़ ली। ओस से भीगे

और नए जुते खेतों से आनेवाली सुबह की हवा से, अरहर और सरसों के हरे-सुनहले खेतों की आकाश-भरी मीठी सुगन्ध से, अहीरों के उन गीतों से, और क्या, टेढ़ी-मेढ़ी कच्ची सड़क से जानेवाली बैलगाड़ियों के चलने की आवाज तक से मैं खिल उठी। मेरी वे शुरू की जिन्दगी की पुरानी यादें अपनी नहीं कही जा सकनेवाली ध्वनि और सुगन्ध लिए मौजूदा वर्तमान की तरह मुझे घेर बैठीं। अन्धी आंखें उनका कुछ भी प्रतिवाद न कर सकीं। मैं अपने उसी बचपन में पहुंच गई। सिर्फ मां ही नहीं मिली, और सब मिल गया। भीतर-ही-भीतर मैं देखने लगी, मेरी दादी अपने बचे-खुचे सिर के बालों को खोलकर, धूप की ओर पीठ करके, बैठी-बैठी 'बड़ी' दे रही हैं। पर उनके कांपते हुए पुराने कमजोर कंठ से गांव के साधु भजनदास के देहतत्त्व-सम्बन्धी गीत की गुनगुनाहट आज नहीं सुनाई दी। नवान्न का वह उत्सव सर्दियों की ओस से नहाए हुए आकाश में सजीव होकर उठ बैठा, किन्तु मूसल से नए धान कूटनेवाली गांव की औरतों में मेरी उन छोटी-छोटी सहेलियों का मेल-जोल कहां गया! शाम होते ही जब पास से कहीं 'हम्बा' ध्वनि सुनाई पड़ती तो याद उठ आती कि मां सन्ध्या-दीप हाथ में लिए ग्वालघर में दिया दिखाने जा रही हैं। साथ ही मानो भीगे हुए पुआल के जलने की गन्ध और धुआं आकर मेरे हृदय में प्रवेश करता, और फिर सुनाई देती तालाब के उस पार के विद्यालंकारों के मन्दिर से आती हुई कांसे के घंटे की ध्वनि। न जाने किसने मेरे बचपन के आठ वर्षों में से उनका सारा निचोड़ छानकर सिर्फ उसका रस और सुगन्ध मेरे चारों तरफ छोड़ दी है।

इसी सिलसिले में बचपन के व्रत और सवेरे ही उठकर शिवपूजा के लिए फूल चुनने की बात याद आने लगती है। यह बात माननी ही पड़ेगी कि कलकत्ता में इधर-उधर की बातचीत और आने-जाने की गड़बड़ी से बुद्धि में थोड़ा-बहुत फर्क आ ही जाता है। धर्म-कर्म, भक्ति और श्रद्धा में गांव की-सी साफ-सुथरी नहीं रहती।

उस दिन की बात मुझे याद आती है जिस दिन अन्धी हो जाने के बाद

कलकत्ता में मेरी एक गांव की सखी ने आकर मुझसे कहा था, "तुझे गुस्सा नहीं आता, कुमू? मैं होती तो अपने पति का कभी मुंह ही नहीं देखती।" मैंने कहा, "बहन, मुंह देखना तो वैसे ही बन्द है, उसके लिए इन जली आंखों पर ही गुस्सा आता है। उन पर गुस्सा क्यों होऊं, बहन!"

समय रहते अच्छे डाक्टर से इलाज नहीं कराया इसके लिए मेरी सहेली लावण्य को भी मेरे पति पर बहुत गुस्सा आया; और उसने मुझे भी गुस्सा दिलाने की कोशिश की।

मैंने उसे समझाया कि "संसार में रहते हुए इच्छा और अनिच्छा से, जान और अनजान में, भूल और भ्रान्ति से अनेक प्रकार के सुख-दुख हुआ करते हैं, किन्तु मन के भीतर अपने पति को अगर स्थिर रख सकी, तो उस दुख में भी एक तरह की शान्ति मिलती है। नहीं तो सिर्फ गुस्से-गुस्सी में बक-झक करते-करते ही जीवन बीत जाता है। आंखों से अन्धी हो गई, यही एक जबरदस्त दुख है, उस पर पति से मनमुटाव करके दुख का बोझ और क्यों बढ़ाऊं?" मुझ जैसी लड़की के मुंह से पुराने जमाने की-सी बात सुनकर लावण्य गुस्सा होकर अवज्ञा से सिर हिलाकर झुंझलाती हुई चली गई।

किन्तु, मुंह से मैं कुछ भी क्यों न कहूं, उसकी बातों में जहर तो था ही, उसकी बात बिल्कुल व्यर्थ नहीं गई। लावण्य के मुंह से निकली हुई क्रोध की बातों ने मेरे मन पर दो-एक चिनगारियां छोड़ दी थीं। मैंने उन्हें पैरों से कुचलकर बुझा तो दिया, किन्तु फिर भी, दो-एक छाले तो रह ही गए।

गांव में आकर शिव-पूजा के उस ठंडे शेफाली-फूल की सुगन्ध से मेरे दिल की सारी आशाएं और श्रद्धा, मेरे उस शिशुकाल की तरह ही, मानो नई और उज्ज्वल हो उठीं। देवता ने मेरे दिल और मेरी घर-गृहस्थी को भरपूर कर दिया। मैं मस्तक नवाकर उनके चरणों पर लोट गई। कहा, "हे देव, मेरी आंखें जाती रहीं, अच्छा ही हुआ, तुम तो मेरे हो।"

किन्तु हाय, गलत कहा था मैंने। 'तुम मेरे हो' ऐसा कहना भी दर्प है।

'मैं तुम्हारी हूं', केवल इतना ही कहने का हक है मुझे। अरे, एक दिन मेरे देवता ही दबी आवाज में यह बात मुझसे कहला लेंगे। हो सकता है कि तब और कुछ भी न रहे, पर मुझे तो रहना ही होगा। किसी पर किसी तरह का मेरा जोर नहीं, सिर्फ अपने ही ऊपर है।

कुछ दिन बड़े आनन्द से बीते। उधर डाक्टरी में मेरे पति का नाम भी होने लगा, सम्मान भी बढ़ने लगा। साथ ही कुछ रुपया भी इकट्ठा हो गया। मगर रुपया अच्छी चीज नहीं। वह मन को दबा देता है, हृदय को ढंक देता है। मन जब राज करता है तो वह अपना सुख आप ही गढ़ लेता है, किन्तु धन जब सुख इकट्ठा करने का भार लेता है, तो मन के लिए फिर कोई काम ही नहीं रह जाता। तब, पहले जहां मन का सुख रहता था, घर की चीज-बस्त, असबाब वगैरह उस जगह को घेर लेता है। तब सुख नहीं मिलता, सुख के बदले मिलता है, सिर्फ असबाब वगैरह।

मैं किसी खास बात या खास घटना का वर्णन नहीं कर सकती। किन्तु अन्धों में महसूस करने की शक्ति कुछ ज्यादा होने से या और किसी कारण से इतना मुझे महसूस होने लगा कि आर्थिक उन्नति के साथ-साथ मेरे पति में परिवर्तन होने लगा है। यौवन के शुरू में तरह-तरह से धर्म-अधर्म के विषय में उनमें जो एक वेदना का अहसास था, उसमें मानो दिनों-दिन जड़ता आने लगी। मुझे याद है, वे किसी समय कहा करते थे, 'केवल रोजी के लिए ही डाक्टरी सीख रहा होऊं, सो बात नहीं, इससे गरीबों का भला भी किया जा सकता है।' जो डाक्टर गरीब मरीजों के दरवाजे पर जाकर पेशगी फीस बिना लिए नाड़ी नहीं देखना चाहते, उनका जिक्र करते हुए मारे नफरत के उनकी जबान रुक जाती थी।

मैं समझ रही हूं कि अब वे दिन नहीं रहे। अपने इकलौते लड़के की जान बचाने के लिए एक गरीब स्त्री ने उनके पैर पकड़ लिए थे, गिड़गिड़ाकर रोने लगी थी वह, किन्तु उन्होंने उसकी उपेक्षा की। अन्त में मैंने अपने सर की कसम देकर उन्हें भेजा, पर उन्होंने तबीयत से उसका

इलाज नहीं किया। जब हम लोगों के पास रुपया कम था तब अन्याय से पैदा किए धन को वे किस दृष्टि से देखते थे, मैं जानती हूं। मगर अब, अब बैंक में बहुत रुपये जमा हैं। अब, एक दिन की बात है कि एक धनी आदमी का गुमाश्ता आकर एकान्त में उनसे दो दिन तक बहुत-सी बातें कर गया। क्या बातचीत हुई मुझे नहीं मालूम, किन्तु उसके बाद जब वे मेरे पास आए और बेहद खुशी के साथ और-और विषयों में बहुत-सी बातें करने लगे, मुझे अपने भीतर की स्पर्शशक्ति से मालूम हुआ कि आज वे अपने ऊपर कालिख पोतकर आए हैं।

अन्धी होने के पहले जिन्हें मैंने अन्तिम बार देखा था, आज मेरे वे दिल के देवता कहां हैं? जिन्होंने मेरी दृष्टिहीन दोनों आंखों के बीच में चुम्बन करके मुझे एक दिन देवी के पद पर अभिषिक्त किया था, मैं उनका क्या कर सकी? एक ही दिन की रिपु की आंधी से जिनका अचानक पतन होता है, और एक दिन के हृदयावेग से फिर वे चढ़ सकते हैं; किन्तु यह जो दिन पर दिन क्षण-क्षण में भीतर से कठोर होते जाना है, बाहरी बातों में बढ़ते हुए हृदय-मन को तिल-तिल करके दबाते जाना है, इसका प्रतिकार सोचती हूं तो कोई राह ही ढूंढ़े नहीं मिलती।

पति के साथ मेरा जो आंखों से देखने का अलगाव हुआ है, वह कुछ भी नहीं किन्तु प्राणों के भीतर जब मैं और भी ज्यादा हांफने लगती हूं, तब मैं समझती हूं कि जहां मैं हूं वहां वे नहीं हैं! मैं अन्धी हूं, संसार के अंधेरे हृदय-प्रदेश में अपनी उस पहली उमर के नए प्रेम, परिपूर्ण भक्ति, अखंड विश्वास को लिए बैठी हूं मैं; अपने देव-मन्दिर में जीवन के आरम्भ में अपने बचपन के उन नन्हें-नन्हें हाथों से मैंने जो हरसिंगार के फूलों की भेंट चढ़ाई थी, अभी तो उनकी ओस भी न सूख पाई होगी कि मेरे नाथ छाया से शीतल इस चिर नवीनता के देश को छोड़कर रुपये कमाने के पीछे इस संसार के रेगिस्तान में न जाने कहां अदृश्य होते चले जा रहे हैं! जिन पर मेरा विश्वास है, मैं जिन्हें धर्म कहती हूं, जिन्हें मैं सारी सुख-सम्पत्ति से बढ़कर समझती हूं, वे बहुत दूर से मेरी ओर हंसते हुए

देख-भर रहे हैं। पर, कोई दिन ऐसा भी था जब यह अलगाव नहीं था। बचपन में हम दोनों ने एक ही रास्ते से यात्रा की थी। उसके बाद कब से मार्ग-भेद होना आरम्भ हुआ, उसे न तो वे ही समझ सके और न ही मुझे ही मालूम हुआ। अन्त में, आज जब मैं उन्हें पुकार रही हूं तो कोई जवाब ही नहीं मिलता।

कभी-कभी मैं सोचती हूं कि शायद अन्धी होने की वजह से मामूली-सी बात को मैं बढ़ा-चढ़ाकर देखती हूं। आंखें होतीं तो शायद मैं संसार को ठीक संसार की तरह ही देख सकती और पहचान सकती।

मेरे पति ने भी एक दिन मुझे यही बात समझाई थी। उस दिन सवेरे एक बूढ़ा किसान अपनी पोती को हैजे से बचा लेने की उम्मीद से उन्हें बुलाने आया था। मेरे कानों में भनक पड़ी, वह कह रहा था, "बेटा, मैं बहुत गरीब हूं, पर परमात्मा तुम्हारा भला करेंगे।" मेरे दिल के देवता ने कहा, "परमात्मा जो करेंगे, सिर्फ उतने ही से हमारा काम नहीं चलेगा। पहले तुम क्या करोगे सो बताओ।" सुनते ही मैं सोचने लगी, 'भगवान ने मेरी आंखें ले लीं, साथ ही कान भी क्यों नहीं ले लिए!' बूढ़े ने एक गहरी सांस ली, और 'हाय भगवान' कहकर चल दिया। मैंने उसी वक्त महरी से कहकर उसे पीछे के दरवाजे से बुलवा लिया। उससे मैंने कहा, "यह लो, बाबा, इन रुपयों से तुम अपनी पोती का इलाज कराना, मेरे पति का भला चाहते हुए तुम इस मुहल्ले से हरीश डाक्टर को लेते जाओ।"

किन्तु दिन-भर मुझे कुछ अच्छा नहीं लगा, मुंह में रुचा ही नहीं कुछ। तीसरे पहर सोते से उठकर उन्होंने पूछा, "तुम आज उदास क्यों दीख रही हो?" पहले की आदत का-सा उत्तर जबान पर आ रहा था कि 'नहीं तो, कुछ नहीं', पर छल-छन्द का जमाना मेरा बीत चुका, मैंने साफ-साफ कहा, "कितने ही दिनों से तुमसे कहना चाहती हूं, पर कहते-कहते क्या कहना है सो भूल जाती हूं। मालूम नहीं, अपने मन की बात मैं ठीक तौर से समझा सकूंगी या नहीं, लेकिन तुम चाहो तो जरूर अपने मन में समझ सकते हो कि हम दोनों ने जिस तरह एक होकर जीवन आरम्भ किया था,

आज वह कुछ और ही तरह का हो गया है।"

उन्होंने हंसकर कहा, "परिवर्तन ही तो संसार का नियम है।"

मैंने कहा, "रुपया-पैसा, रूप-यौवन, सभी का तो परिवर्तन होता है, किन्तु नित्य वस्तु क्या संसार में कुछ है ही नहीं?"

तब उन्होंने जरा गम्भीर होकर कहा, "देखो, और-और स्त्रियां तो सचमुच के अभाव को रोती हैं—किसी का पति कमाई नहीं करता, तो किसी का प्रेम नहीं करता, और एक तुम हो कि आसमान से दुख ढूंढ़ लाती हो!"

मैं उसी वक्त समझ गई कि मेरी अन्धता मेरी आंखों में सच्चाई का काजल लगाकर मुझे इस परिवर्तनशील संसार से बाहर ले गई है, मैं अन्य स्त्रियों की तरह नहीं हूं, मुझे मेरे पति समझेंगे नहीं।

इतने में, देश से एक फुफुआ सास चली आईं, अपने भतीजे की खबर-सुध लेने। हम दोनों ने उन्हें प्रणाम किया। आशीर्वाद देने के पहले ही वे बोल उठीं, "बहू, तुम तो अपनी तकदीर से अन्धी हो गईं, अब हमारा अविनाश अन्धी स्त्री को लेकर कैसे घर-गृहस्थी चलावे, बताओ? उसका दूसरा ब्याह करा दो न!" इस पर मेरे पति अगर हंसी-हंसी में कह देते कि 'ठीक तो है, बुआजी, तुम्हीं लोग देख-भालकर कोई सम्बन्ध ठीक करा दो', तो सब झगड़ा ही तय हो जाता, किन्तु उन्होंने संकोच के साथ कहा, "तुम तो, बुआजी, ऐसी ही बातें किया करती हो, जिसका सिर न पैर!"

बुआजी ने कहा, "क्यों, बेजा क्या कह रही हूं मैं? अच्छा, बहू, तुम्हीं बताओ, इसमें बेजा क्या कहा मैंने?"

मैंने हंसते हुए कहा, "बुआजी, खूब अच्छे आदमी से तुम सलाह लेने बैठीं! जिसकी गांठ काटी जाएगी, उसी से राय पूछी जाती है कहीं?"

बुआजी बोलीं, "हां, बात तो ठीक है। तो फिर हम दोनों अकेले में सलाह करेंगे, क्यों रे अविनाश? लेकिन एक बात है बहू, कुलीन घर की स्त्रियों की जितनी ज्यादा सौतें हो उतना ही उनका स्वामी-गौरव बढ़ता

है। हमारा लड़का डाक्टरी न करके अगर ब्याह करता रहता, तो उसे रोजगार की परवाह ही क्या थी! रोगी डाक्टरों के हाथ पड़ते ही मर जाता है, मरने पर फिर फीस भी नहीं मिलती; किन्तु विधाता का श्राप ऐसा है कि कुलीन की स्त्री मरती ही नहीं, और जितने दिन वह जीती है, उतना ही पति को फायदा-ही-फायदा है।"

दो दिन बाद मेरे पति ने मेरे सामने ही बुआजी से पूछा, "बुआजी, अपना समझकर बिल्कुल अपनी-सी होकर बहू को मदद पहुंचाया करे ऐसी कोई अच्छे घराने की स्त्री तुम्हारी निगाह में है, जो यहां रह सके? इसे आंखों से दीखता नहीं, इसलिए इसकी साथिन बनकर हमेशा कोई इसके पास रहे, तो मैं निश्चिन्त हो जाऊं।"

मैं जब शुरू-शुरू में अन्धी हुई थी, तब वे यह बात कहते, तो ठीक भी था, किन्तु अब तो आंखों के अभाव में अपने या घर-गृहस्थी के काम में कोई खास अड़चन होती हो सो भी नहीं; फिर भी बिना प्रतिवाद किए मैं चुपचाप बैठी रही। बुआजी ने कहा, "बहुत, बहुत! इसकी क्या कमी! मेरे ही जेठजी की एक लड़की है। जैसी देखने में सुन्दर, वैसी स्वभाव की भी लक्ष्मी! लड़की काफी बड़ी हो चुकी है, योग्य वर मिल नहीं रहा, लड़के की तलाश में हैं वे। तुम्हारे जैसा कुलीन मिल जाने पर तो वे तुरन्त ब्याह कर देंगे।"

उन्होंने कुछ चौंककर कहा, "ब्याह के लिए कौन कह रहा है!"

बुआजी बोलीं, "लो, सुन लो, ब्याह बिना किए क्या भले घर की लड़की तुम्हारे घर यों ही आकर पड़ी रहेगी?"

बात बिलकुल ठीक थी। मेरे पति से उसका कोई जवाब देते न बना।

अपनी बन्द आंखों के अनन्त अन्धकार में अकेली खड़ी-खड़ी मैं ऊपर को मुंह उठाए पुकारने लगी, "भगवान, मेरे पति की रक्षा करो।"

कुछ दिन बाद, एक रोज सवेरे मैं पूजा करके घर से निकल ही रही थी कि इतने में बुआजी ने आकर कहा, "बहू, अपनी जिस जेठौती हेमांगिनी

का मैंने जिक्र किया था, आज वह आ गई देश से। हिमू, ये तुम्हारी जीजी हैं, इन्हें प्रणाम करो।"

इतने में अचानक कहीं से वे भी आ पहुंचे, और आते ही मानो वे इस अजनबी स्त्री को देखकर लौट जाने के लिए तत्पर हुए।

बुआजी ने कहा, "कहां चला, अविनाश?"

मेरे पति ने पूछा, "ये कौन हैं?"

बुआजी ने कहा, "यही तो है मेरी जेठौती हेमांगिनी!"

'ये कब आईं', 'किसके साथ आईं', 'कैसे आईं' इत्यादि नाना प्रश्न करके वे बेकार का आश्चर्य प्रकट करने लगे। मैंने मन-ही-मन कहा, 'जो हो रहा है, सो तो मैं सब समझ रही हूं, फिर उस पर छल-छन्द क्यों किया जा रहा है, दुबका-चोरी, दाबना-ढंकना, झूठी बात? अगर अधर्म करना ही है, तो करो न! करोगे तो अपनी अशान्त आदत के लिए ही करोगे। मेरे लिए ऐसी गिरावट, इतना छल-छन्द क्यों करते हो? मुझे बहलाए रखने के लिए इतना ढकोसला क्यों?'

हेमांगिनी का हाथ पकड़कर मैं उसे अपने सोने के कमरे में ले गई। उसके मुंह पर, गालों पर हाथ फेरकर देखा, मुंह शायद सुन्दर ही होगा। उमर भी चौदह-पन्द्रह से कम न होगी।

बालिका सहसा जोर से हंस पड़ी। बोली, "यह क्या कर रही हो? मेरे ऊपर से भूत झाड़ रही हो क्या?"

उसकी उस खुली सरल हंसी से हम दोनों के बीच जो काले बादल थे, वे एक क्षण में दूर हो गए। दाहिना हाथ उसके गले में डालकर मैंने कहा, "मैं तुम्हें देख रही हूं, बहन!" इतना कहकर मैंने उसके कोमल मुंह पर फिर एक बार हाथ फेरा।

"देख रही हो!" कहकर वह फिर हंसने लगी। बोली, "मैं क्या तुम्हारे बगीचे की सेम हूं या बैंगन, जो इस तरह हाथ फेरकर देख रही हो कि कितनी बड़ी हुई?"

तब मुझे सहसा खयाल आया कि हेमांगिनी को शायद मालूम नहीं कि

मैं अन्धी हूं।

मैंने कहा, "बहन, मैं अन्धी जो हूं।"

सुनते ही वह अचम्भे में पड़कर कुछ देर तक गम्भीर बनी रही। मुझे बिलकुल साफ मालूम हुआ कि उसने अपनी उत्सुकता-भरी बड़ी-बड़ी जवान आंखों से मेरे दृष्टिहीन नेत्र और चेहरे के भाव को खूब गहराई के साथ देखा, और उसके बाद कहा, "अच्छा! इसीलिए शायद चाची को तुमने यहां बुलाया है?" मैंने कहा, "नहीं, मैंने नहीं बुलाया, तुम्हारी चाची अपने आप ही आई हैं।"

बालिका फिर हंसकर बोली, "दया करके! तब तो मालूम होता है दयामयी जल्दी टलनेवाली नहीं! पर बाबूजी ने मुझे क्यों भेजा?"

इतने में बुआजी आ गईं। अब तक मेरे पति के साथ उनकी बातचीत हो रही थी। बुआजी के कमरे में घुसते ही, हेमांगिनी ने उनसे पूछा, "चाची, देश कब चलोगी, बताओ?"

बुआजी ने कहा, "वाह री लड़की! आते देर न हुई, जाने की पड़ गई तुझे! ऐसी चंचल लड़की तो मैंने कहीं नहीं देखी!"

हेमांगिनी ने कहा, "सुनो चाची, तुम तो जल्दी यहां से जाती नहीं दिखाई देतीं। खैर, तुम्हारा तो यह घर ही ठहरा, जितने दिन चाहो, रहो तुम, पर मैं तो जाऊंगी, पहले ही से कहे देती हूं तुमसे!" इतना कहकर चट्-से उसने मेरा हाथ पकड़कर कहा, "क्यों बहन, ठीक है न? तुम लोग तो मेरे ठीक अपने नहीं हो?"

इसके इस सरल प्रश्न का कुछ उत्तर न देकर मैंने उसे अपनी छाती के पास खींच लिया। मैंने देखा कि बुआजी वैसे चाहे कितनी ही जबरदस्त क्यों न हों, पर इस लड़की को सम्हालना उनके बूते से बाहर है। बुआजी ने ऊपर से जरा भी गुस्सा न दिखाकर हेमांगिनी को लाड़ करने की कोशिश की, पर उसने उन्हें अपने ऊपर से झाड़कर फेंक दिया। बुआजी ने इन सब बातों को लाड़ली लड़की का लाड़ समझकर हंसकर उड़ा देना चाहा, और वे चली जा रही थीं कि इतने में फिर क्या जाने क्या सोचकर

लौट आईं, और हेमांगिनी से कहने लगीं, "हिमू, चल तेरे नहाने का वक्त हो गया।"

हेम ने मेरे पास आकर कहा, "हम दोनों जनी घाट पर जाकर नहाएंगी, क्यों बहन?"

बुआजी की इच्छा के खिलाफ होने पर भी उन्होंने इस बात का विरोध नहीं किया, वे जानती थीं कि धींगा-धींगी करने से हेमांगिनी की ही जीत होगी, और दोनों के बीच का विरोध भद्दे रूप में मेरे सामने प्रकट हो जाएगा।

पीछे के तालाब की तरफ जाते-जाते हेमांगिनी ने मुझसे पूछा, "तुम्हारे कोई लड़का-बाला क्यों नहीं हुआ, बहन?"

मैंने जरा मुस्कुराकर कहा, "क्यों नहीं हुआ, सो मैं कैसे कह सकती हूं? भगवान ने नहीं दिया।"

हेमांगिनी बोली, "जरूर तुमने पहले जन्म में कोई पाप किया होगा।"

मैंने कहा, "सो भी भगवान जानते होंगे।"

बालिका ने प्रमाण के तौर पर कहा, "देखो न चाची को। मन की बहुत काली हैं न वे, इसी से उनकी कोख से कोई बच्चा ही नहीं होता।"

पाप-पुण्य, सुख-दुख, दंड और पुरस्कार का सिद्धान्त मैं खुद भी नहीं समझती, बालिका को भी समझाने की कोशिश नहीं की। सिर्फ एक गहरी सांस लेकर मैंने मन-ही-मन उससे कहा, 'तुम्हीं जानो।' हेमांगिनी उसी क्षण मुझसे लिपट गई, और हंसकर बोली, "अरे वाह रे, मेरी बात सुनकर भी तुम गहरी सांस लेती हो! मेरी बात पर भला कोई ध्यान देता होगा।"

धीरे-धीरे मालूम होने लगा कि मेरे पति के डाक्टरी व्यवसाय में बड़ी रुकावटें आने लगी हैं। दूर से बुलावा आने पर तो वे जाते ही नहीं, और आस-पास कहीं से बुलावा आने पर वे झटपट काम खत्म करके घर चले आते हैं। पहले तो काम से फुरसत मिलने पर दोपहर को खाने और सोने के समय सिर्फ भीतर आते थे, पर अब तो बुआजी चाहे जब उन्हें बुला

भेजतीं और वे भी बगैर जरूरत बुआजी की खबर-सुध लेने चले आते हैं। बुआजी जब पुकारकर कहतीं कि 'हिमू, मेरा पानदान तो ले आ जरा', तो मैं समझ जाती कि बुआजी के कमरे में मेरे स्वामी मौजूद हैं। पहले-पहल दो-चार दिन तक हेमांगिनी पानदान, तेल की प्याली, सिन्दूर की डिबिया आदि लेकर पहुंचाती रही, किन्तु बाद में वह बार-बार बुलाई जाने पर भी खुद न जाकर महरी के हाथ ही सब चीजें भेजने लगी। बुआजी बुलातीं, 'हेमांगिनी, हिमू, हिमी!' पर बालिका मानो मेरे प्रति अपने एक दर्द के बहाव से मुझसे उलझी ही रहती, एक तरह की आशंका और दुख उसे घेरे रहता। और इसके बाद से तो वह भूलकर भी मेरे सामने मेरे पति का जिक्र तक न करती।

इतने में, एक दिन भाई साहब मुझे देखने आए। मैं समझती थी कि भइया की दृष्टि तेज है। यहां क्या हो रहा है, उनसे छिपाना लगभग असम्भव है, क्योंकि वे बड़े कठोर विचारक हैं; वे अन्याय पर रत्ती-भर भी रहम करना नहीं जानते। सबसे ज्यादा डर मुझे इस बात का था कि मेरे स्वामी उन्हीं के सामने अपराधी के रूप में खड़े होंगे। मैंने ज्यादा ही खुशी दिखलाकर सबकुछ को ढंक रखा। मैंने ज्यादा बातें करके, ज्यादा उतावली दिखाकर, बहुत ज्यादा धूमधाम मचाकर चारों ओर मानो एक तरह की धूल उठा रखने की कोशिश की। किन्तु मेरे लिए यह सब इतना अस्वाभाविक सिद्ध हुआ कि वही मुझे पकड़वा देने का कारण बन गया। किन्तु भाई साहब ज्यादा दिन ठहर न सके। मेरे पति ऐसा ढीलापन दिखाने लगे कि साफतौर से उसने रुखाई का रूप धारण कर लिया। भइया चले गए। जाने के पहले अपने दिल के समूचे स्नेह के साथ मेरे माथे पर बहुत देर तक अपना कांपता हुआ हाथ रखे रहे, और मन-ही-मन एकाग्र चित्त से क्या आशीर्वाद देते रहे सो मैं समझ गई। उनके आंसू मेरे आंसू से भीगे हुए गालों पर आ-आकर गिरने लगे।

साफ याद है मुझे, चैत के दिन थे। उस दिन शाम के वक्त लोग हाट

से लौटकर आ रहे थे। दूर से वर्षा को लिए हुए एक आंधी चली आ रही थी, उसकी हाल की भीगी मिट्टी की महक और हवा की नमी से आकाश डूब रहा था। बिछुड़े हुए साथी लोग अंधेरे मैदान में एक-दूसरे को व्याकुल होकर ऊंचे स्वर से बुला रहे थे। मुझ अन्धी के कमरे में, जब तक मैं अकेली रहती, दिया नहीं जलाया जाता, इस डर से कि कहीं उसकी लौ लगाकर मैं कपड़े न जला लूं, और कोई दुर्घटना न हो जाए। मैं अपने सुनसान अंधेरे कमरे में धरती पर बैठी-बैठी दोनों हाथ जोड़कर अपनी अन्धी दुनिया के मालिक को पुकार रही थी, 'प्रभो, जब तुम्हारी दया अहसास में नहीं आती और तुम्हारा मतलब जब समझ में नहीं आता, तब अपने अनाथ टूटे दिल की पतवार को मैं जी-जान से थामकर उसे छाती से लगा लेती हूं। छाती फाड़कर खून की धारा बह निकलती है, फिर भी तूफान से उसे नहीं बचा सकती। मेरी अब और कितनी परीक्षा करोगे, मुझमें अब बल ही कितना है!' यह कहते-कहते भीतर से आंसू उमड़ आए, और मैं खाट पर सिर रखकर रोने लगी। तमाम दिन मुझे घर का काम-काज करना पड़ता है, हेमांगिनी छाया की तरह मेरे पास ही पास बनी रहती है। छाती के भीतर जो आंसू उमड़-उमड़ आते हैं, उन्हें आंखों तक लाकर बाहर निकाल देने का भी मौका मुझे नहीं मिलता। बहुत दिन बाद आज आंखों से आंसू निकले। इतने में मालूम हुआ कि खाट कुछ हिली, और किसी के हिलने की धमक सुनाई दी। दूसरे ही क्षण हेमांगिनी आकर मेरे गले से लिपट गई, और चुपचाप अपने आंचल से मेरी आंखें पोंछने लगी। आज शाम से ही वह क्या सोचकर और कैसे आकर मेरी खाट पर सो रही थी, मैं नहीं जान सकी। उसने न तो कुछ पूछा और न कुछ कहा। मैंने भी उससे एक शब्द नहीं कहा। धीरे-धीरे मेरे माथे पर अपना ठंडा हाथ फेरने लगी।

इस बीच कब बादल गरजे, कब जोर की आंधी आई और खूब वर्षा भी हो गई, मुझे कुछ खबर ही न पड़ी। बहुत दिन बाद एक गहरी शान्ति ने आकर ज्वार की आग से झुलसे हुए मेरे दिल को शान्त कर दिया।

दूसरे दिन हेमांगिनी ने बुआजी से कहा, "चाची, मैं पहले से कहे देती हूं, अगर तुम देश न चलोगी तो मैं कैवर्त भइया के साथ चली जाऊंगी।"

बुआजी ने कहा, "उसके साथ जाने की क्या जरूरत, मैं कल जाऊंगी न। दोनों एक-साथ चलेंगी। और यह देख, हिमू, अविनाश ने तेरे लिए कैसी उक्दा मोती की जड़ाऊ अंगूठी बनवा दी है!" इतना कहकर बड़े गर्व के साथ बुआजी ने अंगूठी हेमांगिनी के हाथ में दी।

हेमांगिनी ने कहा, "यह देख चाची, मैं कैसा अच्छा निशाना लगा सकती हूं।" और अंगूठी खिड़की में से पीछे के तालाब में फेंक दी। क्रोध से, दुख से, आश्चर्य से बुआजी के रोंगटे खड़े हो गए। उन्होंने बार-बार ख़ुशामद के साथ मुझसे कहा, "बहू, अविनाश से इसका जिक्र मत करना, नहीं तो बेचारा बड़ा दुखी होगा। तुम्हें मेरे सिर की कसम है, बहू, कहना मत।"

मैंने कहा, "ज्यादा कहने की जरूरत नहीं, बुआजी, मैं कोई भी बात नहीं कहूंगी।"

दूसरे दिन, देश रवाना होने से पहले हेमांगिनी ने मुझसे लिपटकर कहा, "जीजी मुझे भूलना मत, याद रखना।"

मैंने बार-बार उसके मुंह पर दोनों हाथ फेरकर कहा, "अन्धे कुछ भूलते नहीं बहन! मेरी तो कोई दुनिया नहीं है, मैं तो सिर्फ अपने मन ही को लिए हुए हूं।" इतना कहकर मैंने उसके माथे को अपनी ओर खींचकर चूम लिया। मेरी आंखों से उसके बालों पर झरझर आंसू झरने लगे।

हेमांगिनी के चले जाने पर मेरी दुनिया सूख-सी गई। उसने मेरे प्राणों में जो एक तरह की सुगन्ध, एक तरह का सौन्दर्य और संगीत, एक तरह का उज्ज्वल प्रकाश और कोमल तरुणता ला दी थी, सहसा उसके बिला जाने पर एक बार मैंने अपनी अंधेरी दुनिया में, अपने चारों तरफ, दोनों हाथ बढ़ाकर टटोल-टटोलकर देखा कि मेरा कहां क्या है।

उस दिन उन्होंने मेरे पास आकर विशेष प्रसन्नता दिखाते हुए मुझसे कहा, "ये लोग चली गईं, अब जरा काम-काज करने का समय मिलेगा।"

धिक्कार है, धिक्कार है मुझे! मेरे लिए इतनी चातुरी, इतना छल, इतना कपट! क्यों? मैं क्या सचाई से डरती हूं? मैं क्या चोट से कभी घबराई हूं? उन्हें क्या मालूम नहीं कि जब मैंने उनकी खुशी में अपनी खुशी समझकर अपनी दोनों आंखें दी थीं, तब मैंने अपने चिर अन्धकार को कितनी खुशी से अपना लिया था?

अब तक मेरे और उनके बीच सिर्फ अन्धता का ही परदा था, पर आज से उस पर एक और परदा पड़ गया। मेरे पति भूलकर भी कभी हेमांगिनी का नाम मेरे सामने जबान पर नहीं लाते। मानो उनकी दुनिया से हेमांगिनी सदा के लिए एकदम गायब हो गई हो, मानो उनके मन पर उसने कभी भी जरा-सी लकीर तक न खींची हो! किन्तु इधर चिट्ठी-पत्री से वे हमेशा उसकी खबर पाते रहते हैं, इस बात का मैं अनायास ही अनुभव कर लिया करती हूं। जैसे, तालाब में बरसात का पानी जिस रोज जरा भी ज्यादा आ जाता है, उसी वक्त कमल के डंठल में खिंचाव पड़ता है, उसी तरह उनके भीतर जिस दिन जरा भी बाढ़ आती, जरा भी उफान आता, उसी दिन अपने दिल की जड़ में मुझे उसका पता लग जाता है। खिंचाव ऐसी ही चीज है! कब उन्हें हेमांगिनी की खबर मिलती और कब नहीं, मुझसे कुछ छिपा नहीं रहता। किन्तु मैं उन्हें उसकी याद नहीं दिला सकती थी। मेरे अंधेरे दिल के आकाश में वह जो एक उन्मत्त, उद्दाम, उजला, सुन्दर तारा जरा देर के लिए उगा था, उसकी जरा खबर पाने और थोड़ी-बहुत चर्चा करने के लिए मेरा जी प्यासा-सा बना रहता, किन्तु फिर भी अपने पति के सामने क्षण-भर के लिए उसका नाम लेने का भी मुझे अधिकार न था और इस तरह हम दोनों के बीच वाक्य और वेदना से भरा ऐसा एक तरह का सन्नाटा जमा बैठा था, जिसकी याद आते ही दिल दुखने लगता है।

बैसाख महीने के बीचोंबीच एक दिन महरी ने आकर मुझसे पूछा, “बहूजी, नदी किनारे घाट पर आज अपनी नाव कहां के लिए तैयार हो रही है?

बाबूजी कहीं जा रहे हैं क्या?"

मैं खुद समझ रही थी कि कुछ तैयारियां-सी हो रही हैं, और अब फिर मेरे भाग्य के आकाश में आंधी के पहले का-सा सन्नाटा और उसके बाद प्रलय के छितराए हुए बादल आ-आकर जम रहे हैं; और यह भी अनुभव कर रही थी कि स्वयं संहार करनेवाले शंकर सूनी उंगली के इशारे से अपनी सारी प्रलय-शक्ति को मेरे सिर पर इकट्ठा कर रहे हैं। महरी से मैंने कहा, "कहां, मुझे तो अभी तक कोई खबर नहीं मिली!"

महरी ने फिर कुछ पूछने की हिम्मत नहीं की। एक गहरी सांस लेकर चली गई वह।

बहुत रात बीते पति ने आकर मुझसे कहा, "दूर से मेरा बुलावा आया है, सो कल सवेरे ही मुझे रवाना होना पड़ेगा। लौटने में दो-तीन दिन की देरी होगी।"

मैं तुरन्त बिस्तर से उठकर खड़ी हो गई, और बोली, "क्यों तुम मुझसे झूठ बोल रहे हो?"

पति ने कांपते हुए स्वर से कहा, "झूठ मैंने क्या कहा?"

मैंने कहा, "तुम ब्याह करने जा रहे हो!"

वे चुप रह गए। मैं ज्यों-की-त्यों स्थिर खड़ी रही। बहुत देर तक घर में बिलकुल सन्नाटा रहा। अन्त में मैंने कहा, "कुछ तो जवाब दो। कहो कि हां, मैं ब्याह करने जा रहा हूं!"

उन्होंने प्रतिध्वनि की भांति उत्तर दिया, "हां, मैं ब्याह करने जा रहा हूं।"

मैंने कहा, "नहीं, तुम नहीं जा सकते। मैं तुम्हें इस महासंकट से, इस महापाप से बचाऊंगी ही। इतना भी अगर न कर सकी, तो मैं तुम्हारी पत्नी ही किस बात की? किसलिए मैंने इतनी शिव पूजा की थी?"

फिर बहुत देर तक सन्नाटा रहा। मैंने जमीन पर पड़कर उनके पैरों से लिपटकर कहा, "मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है, कौन-सा अपराध किया है मैंने तुम्हारा, जो आज तुम्हें दूसरी पत्नी की जरूरत पड़ गई? तुम्हें मेरे

सर की कसम है, सच-सच बताओ।"

तब मेरे स्वामी ने धीरे-धीरे कहा, "सच-सच ही कह रहा हूं। तुम्हारे अन्धेपन ने तुम्हें एक न खत्म होनेवाले पर्दे में घेर रखा है, तुम तक मैं किसी भी तरह पहुंच ही नहीं पाता। तुम मेरी देवी हो, देवी के समान भयानक हो, तुम्हारे साथ मैं रोजमर्रा की घर-गृहस्थी नहीं चला सकता। ऐसी एक साधारण स्त्री चाहिए मुझे कि जिस पर मैं बक-झक सकूं, गुस्सा हो सकूं, जिससे मैं प्यार कर सकूं, लाड़ कर सकूं, जिसे मैं गहने-कपड़े बनवाके दे सकूं।"

"मेरी छाती के भीतर चीरकर देखो, मैं बिलकुल साधारण स्त्री हूं या नहीं! देखोगे, ब्याह के दिन की उस बालिका के सिवा और कुछ भी नहीं हूं मैं। मैं तुम पर श्रद्धा करना चाहती हूं, भरोसा करना चाहती हूं, तुम्हारी मैं पूजा करना चाहती हूं। तुम अपना अपमान करके, मुझे दुसह दुख देकर, मुझे अपने से बड़ा मत बनाओ, प्रियतम! मुझे सब विषयों में अपने पैरों के नीचे रखो, नाथ!"

मैंने क्या-क्या बातें कही थीं, सो क्या मुझे याद हैं! विक्षुब्ध समुद्र क्या अपना गर्जन स्वयं सुन पाता है? सिर्फ इतना याद है कि मैंने कहा था, 'अगर मैं सती होऊं, तो भगवान साक्षी रहे, तुम किसी भी तरह अपनी धार्मिक प्रतिज्ञा भंग न कर सकोगे। उस महापाप के होने के पहले या तो मैं विधवा हो जाऊंगी, या हेमांगिनी नहीं बचेगी।' यह कहते-कहते मैं बेहोश होकर गिर पड़ी।

जब मुझे होश आया, तब तक पौ फटने पर बोलनेवाली चिड़ियों ने चहचहाना शुरू नहीं किया था, और मेरे स्वामी चले गए थे।

अपने घर के ठाकुरद्वारे में दरवाजा बन्द करके मैं पूजा करने बैठ गई। तमाम दिन मैं बाहर नहीं निकली। शाम को बड़े जोर की आंधी आई, तूफान था वह, सारा मकान कांपने लगा। फिर भी मैंने यह नहीं कहा कि 'हे भगवान, मेरे पति इस समय नदी में हैं, उनकी रक्षा करो!' मैं एकाग्र चित्त से केवल यही कहने लगी कि 'भगवान्, मेरे भाग्य में जो बदा है सो

होगा, पर मेरे स्वामी को तुम इस महापातक से बचाओ।'

सारी रात बीत गई। उसके दूसरे दिन भी मैंने अपना आसन नहीं छोड़ा। बिना खाए-पीए और बिना सोए मुझे किसने बल दिया, मालूम नहीं, मैं पाषाण-मूर्ति के सामने पत्थर की मूरत की तरह ज्यों-की-त्यों स्थिर बैठी रही।

शाम के वक्त बाहर से दरवाजे पर धक्के का शब्द सुनाई दिया। दरवाजा तोड़कर जब लोग भीतर घुसे, तब मैं बेहोश पड़ी थी।

बेहोशी दूर होने पर मैंने सुना, 'जीजी!' आंख खोलकर देखा कि मैं हेमांगिनी की गोद में पड़ी हूं। सिर हिलाते ही मालूम हुआ कि वह ब्याह के कपड़े पहने हुए है। भीतर से मेरी पसलियां तक चीख उठीं, 'हां भगवान, मेरी प्रार्थना नहीं सुनी तुमने! आखिर मेरे स्वामी का पतन हो ही गया!'

हेमांगिनी ने सिर झुकाकर धीरे-से मुझसे कहा, "जीजी, तुम्हारी असीस लेने आई हूं मैं।"

पहले तो मैं क्षण-भर के लिए पत्थर-सी कठोर हो गई, फिर दूसरे ही क्षण उठके बैठ गई। मैंने कहा, "तुम्हें आशीर्वाद दूंगी, बहन! तुम्हारा क्या कसूर!"

हेमांगिनी अपने स्वाभाविक मिठास-भरे और ऊंचे स्वर में हंस उठी, और बोली, "कसूर! तुम खुद ब्याह करो तो कसूर नहीं, और मैं करूं तो कसूर है?"

हेमांगिनी से लिपटकर मैं भी हंसने लगी। मन-ही-मन कहा, 'संसार में मेरी ही प्रार्थना क्या सबसे बढ़कर है? उनकी इच्छा क्या कोई चीज ही नहीं! जो चोट पड़ी है वह मेरे ही सिर पर पड़े, पर दिल के भीतर जहां मेरा धर्म है, जहां मेरी श्रद्धा है, वहां उसे हरगिज न पड़ने दूंगी। मैं जैसी थी वैसी ही रहूंगी।'

हेमांगिनी ने मेरे पांव पड़कर पांव की धूल अपने माथे से लगा ली। मैंने कहा, "तुम चिर सौभाग्यवती होओ, बहन, चिर सुखी होओ!"

हेमांगिनी ने कहा, "आज सिर्फ असीस देकर ही छुटकारा न पा सकोगी, जीजी! अपनी बहन और बहनोई को भी तुम्हें अपने हाथों से वरण करना होगा। तुम सती हो, तुम्हारा आशीर्वाद ही हम दोनों के जीवन का मूलधन होगा, जीजी! उनकी शरम करने से काम न चलेगा। अगर आज्ञा हो, तो उन्हें मैं ले आऊं भीतर?"

मैंने कहा, "जाओ, ले आओ।"

कुछ देर बाद मेरे कमरे में नई आहट ने प्रवेश किया। स्नेह का एक प्रश्न मेरे कानों में पड़ा, "अच्छी तरह हो, कुमू?"

मैंने उतावली के साथ बिछौने से उठकर भाई साहब के पांव के पास प्रणाम करके कहा, "भइया!"

हेमांगिनी बोली, "भइया कैसे? जरा कान तो ऐंठ दो इनके। अब ये तुम्हारे भइया नहीं, छोटे बहनोई हैं!"

तब मैं सब बात समझ गई। मुझे मालूम था, भइया की प्रतिज्ञा थी कि वे ब्याह नहीं करेंगे। मां नहीं थी, कह-सुनकर ब्याह करानेवाला और कोई भी न था। अब शायद मैंने ही उनका ब्याह करा दिया। मेरी दोनों आंखों से आंसुओं की वर्षा-सी होने लगी, किसी भी तरह मैं उन्हें रोक न सकी। भइया धीरे-धीरे मेरे बालों में हाथ फेरने लगे, और हेमांगिनी मुझसे लिपटकर सिर्फ हंसती ही रही।

रात को नींद नहीं आ रही थी, मैं बेचैन मन से पति के आने की आशा कर रही थी। लज्जा और निराशा को वे कैसे दूर करेंगे, मेरी कुछ समझ में नहीं आ रहा था।

बहुत रात बीते धीरे-धीरे दरवाजा खुला। मैं चौंककर बैठ गई। मेरे पति के पैरों की आहट थी। छाती के भीतर मेरा दिल और उसके साथ मेरी पसलियां भी पछाड़ें खाने लगीं।

उन्होंने बिस्तर पर आकर मेरा हाथ थामकर कहा, "तुम्हारे भइया ने ही मुझे बचाया है। मैं क्षण-भर के मोह में आकर मरने जा रहा था। उस

दिन जब मैंने नाव पर पैर रखा, तब मेरी छाती पर कितना भारी पत्थर जमा बैठा था, सो मैं जानता हूं या भगवान ही जानते हैं। जब नदी में जोर की आंधी आई तो प्राणों का भी भय हो रहा था, और साथ ही यह भी सोच रहा था कि डूब जाऊं तो मेरा उद्धार हो जाए। माथुरगंज में पहुंचते ही सुना कि एक दिन पहले ही तुम्हारे भइया के साथ हेमांगिनी का ब्याह हो गया है। कितनी लज्जा से और कितने आनन्द से नाव पर वापस आया, सो मैं कह नहीं सकता। इन्हीं दो दिनों में मैं खूब अच्छी तरह समझ गया हूं कि तुम्हारे बगैर मुझे सुख नहीं, तुम्हारे सिवा मेरे लिए और कहीं भी कोई शान्ति नहीं, तुम मेरी देवी हो।"

मैंने हंसकर कहा, "नहीं, मुझे देवी बनाने की जरूरत नहीं, मैं तुम्हारे घर की गृहिणी हूं, मैं तुम्हारी साधारण पत्नी-मात्र हूं, और कुछ भी नहीं।"

स्वामी ने कहा, "मेरी भी एक बात तुम्हें रखनी होगी। मुझे अब देवता कहकर कभी भी किसी दिन शर्मिन्दा मत करना। मैं भी तुम्हारा साधारण पति हूं, तुम्हारा प्रेमी हूं, और कुछ भी नहीं।"

दूसरे दिन उलू-ध्वनि और शंख-ध्वनि से सारा मुहल्ला गूंज उठा।

हेमांगिनी उठते-बैठते, नहाते-खाते, सोते-जागते, शाम-सवेरे, हर वक्त मेरे पति का मजाक उड़ाने लगी। वे बेचारे तंग आ गए, परेशान हो गए। किन्तु, वे कहां गए थे, क्या हुआ था, मुझसे किसी ने भी उसका कोई जिक्र तक नहीं किया।

देन-लेन

पांच-पांच लड़कों के बाद जब लड़की पैदा हुई तो मां-बाप ने बड़े प्यार से उसका नाम रखा निरुपमा। इस घराने में ऐसा शौकीनी नाम इसके पहले कभी सुनने में नहीं आया। अब तक अकसर देवी-देवताओं के नाम पर ही सबके नाम रखे जाते थे; जैसे गणेश, महेश, सीता, पार्वती आदि।

इधर कुछ दिनों से निरुपमा की सगाई की बात चल रही है। उसके पिता रामसुन्दर ने बहुत तलाश किया, परन्तु पसन्द का कोई लड़का ही नहीं मिला। आखिर एक जबरदस्त रायबहादुर रईस के घर उनके इकलौते लड़के की उन्हें टोह लगी। हालांकि रायबहादुर के बाप-दादों की जमीन-जायदाद और धन-दौलत बहुत कुछ खत्म हो चुकी थी, किन्तु था वह खानदानी घराना।

वर पक्ष की तरफ से दस हजार रुपये नकद और काफी से ज्यादा दहेज की मांग पेश हुई। रामसुन्दर बिना कुछ सोचे-समझे इस बात पर राजी हो गए। कारण, उन्होंने सोचा कि ऐसे अच्छे लड़के को किसी भी तरह हाथ से न जाने देना चाहिए।

किन्तु रुपयों का इन्तजाम आखिरी-दम तक कोशिश करते रहने पर भी नहीं हुआ तो नहीं ही हुआ। बहुत कुछ गिरवी रखकर, बेचकर, बहुत कोशिश करने पर भी छह-सात हजार की कमी रह ही गई। और इधर ब्याह के दिन करीब आ पहुंचे।

अन्त में ब्याह का दिन भी आ गया। बहुत ज्यादा ब्याज पर एक ने

बाकी रुपया देना कबूल भी कर लिया था, किन्तु वक्त पर वह लापता हो गया। विवाह-मंडप में बड़ी भारी कांय-कांय मच गई और बड़ी भारी नाराजगी फैल गई। रामसुन्दर ने रायबहादुर के हाथ जोड़े, खुशामद की और कहा, "शुभ कार्य पूरा हो जाने दीजिए, आपके रुपये मैं जरूर अदा कर दूंगा।"

रायबहादुर बोले, "बगैर रुपया पाए लड़का मंडप में नहीं जा सकता।"

इस अप्रिय घटना से घर के भीतर औरतों में रोना-सा पड़ गया। और, इस भारी मुसीबत का जो मूल कारण है, वह ब्याह के कपड़े पहने, गहने पहने, माथे पर चन्दन लेपे चुपचाप बैठी थी। भावी ससुर-खानदान पर उसकी भक्ति और प्रेम खूब बढ़ रहा हो, ऐसा भी नहीं कहा जा सकता।

इतने में एक नई बात पैदा हो गई। लड़का अकस्मात् ही अपने बाप के खिलाफ हो गया। वह अपने बाप से कह बैठा, "खरीद-बिक्री और भाव-ताव की बात मैं नहीं समझता। मैं ब्याह करने आया हूं, ब्याह करके ही लौटूंगा।"

बाप बेचारे, जो भी उनके सामने पड़ा उसी से कहने लगे, "देखा, साहब, आजकल के लड़कों का ढंग..." दो-एक जो समझदार और होशियार पुरुष थे, उन्होंने कहा, "धर्मशास्त्र और न्यायनीति की शिक्षा अब तो बिलकुल रही ही नहीं, उसी का तो यह नतीजा है।"

आधुनिक शिक्षा का जहरीला फल अपनी ही सन्तान में फला हुआ देखकर रायबहादुर कोशिश से हारे हुए बैठे रहे। ब्याह तो किसी कदर हो गया, किन्तु बिना आनन्द के उदास मन से।

ससुराल विदा करते समय पिता ने अपनी प्यारी बेटी को छाती से लगा लिया, उनकी आंखों से आंसुओं की धारा बहने लगी।

लड़की ने चिन्तातुर होकर पूछा, "वहांवाले क्या अब मुझे यहां कभी आने नहीं देंगे, बापूजी?"

पिता ने रुंधे हुए कंठ से कहा, "क्यों नहीं आने देंगे, बेटी! मैं खुद जाकर तुझे ले आऊंगा।"

रामसुन्दर अकसर लड़की को देखने जाते हैं, पर समधी के घर उनका कोई आदर नहीं। नौकर-चाकर तक उन्हें नीची निगाह से देखते हैं। अन्तःपुर के बाहर एक अलहदा कमरे में पांच मिनट के लिए किसी दिन लड़की से मिल पाते, और किसी दिन योंही बिना मिले ही वापस चले आते।

समधियाने में ऐसा अपमान तो अब सहा नहीं जाता। रामसुन्दर ने तय किया कि 'जैसे भी हो रुपया अब अदा कर ही देना चाहिए।'

किन्तु अभी जितना कर्ज का बोझ सिर पर लदा है, उसी से छुटकारा पाना मुश्किल हो रहा है, आगे की तो बात ही क्या! घर-गृहस्थी का खर्च भी किसी तरह खींचातानी से चल रहा है और कर्ज देनेवाले महाजनों की निगाह से बचने के लिए तो उन्हें रोज तरह-तरह के हीले-हवाले सोचने पड़ते हैं।

इधर ससुराल में निरुपमा को रात-दिन उठते-बैठते जली-कटी सुननी पड़ती है। मायके की निन्दा सुनते-सुनते जब बरदाश्त से बाहर हो जाता है, तब वह अपने कमरे का दरवाजा बन्द करके अकेली बैठी आंसू बहाया करती है; और यह उसका रोज का काम हो गया।

खासकर सास की घुड़की-झिड़की तो कभी रुकती ही नहीं। यदि कोई कहता कि 'अहा, कैसी शकल है! जरा बहू का मुंह तो देखो!' तो सास झमककर बोल उठती हैं, 'होगी नहीं! जैसे घर की लड़की है, शकल भी तो वैसी ही होगी!'

और तो क्या, बहू के खाने-पहनने तक की कोई खबर नहीं लेता। अगर कोई दयावान पड़ोसिन किसी गलती का जिक्र करती तो सास कहती, 'बस-बस, बहुत है इतना ही!' अर्थात अगर बाप पूरे रुपये देता तो लड़की की पूरी खातिर होती। सभी ऐसा भाव दिखाते जैसे बहू का यहां कुछ हक ही नहीं, जैसे यहां वह धोखे से घुस आई हो। शायद लड़की के इस अनादर और अपमान की बात उसके पिता के कानों तक पहुंच गई। और उसका फल यह हुआ कि रामसुन्दर रहने का मकान तक बेचने की

कोशिश करने लगे।

किन्तु अपने लड़कों से उन्होंने यह बात बिल्कुल छिपा रखी कि वे उन्हें बिना घर-द्वार के करने पर तुले हुए हैं। उन्होंने तय किया था कि मकान बेचकर उसी को किराए पर लेकर रहेंगे, और ऐसी तरकीब से चलेंगे कि उनके मरने के पहले लड़कों को इस बात का पता ही न पड़ पाएगा।

लड़कों को किसी तरह यह बात मालूम हो गई। सबके सब लड़के बाप के पास आकर रोने लगे। खासकर बड़े तीनों लड़के विवाहित हैं, और उनमें से किसी-किसी के बच्चे भी हैं। उनके विरोध ने बड़ा गम्भीर रूप धारण किया। आखिर मकान बेचना स्थगित रहा और तब रामसुन्दर जगह-जगह से मोटे ब्याज पर थोड़े-थोड़े रुपये कर्ज लेने लगे। अन्त में ऐसा हुआ कि घर का खर्च चलना भी मुश्किल हो गया।

निरुपमा पिता का मुंह देखकर सब समझ गई। उसे बूढ़े पिता के सफेद बालों पर, सूखे चेहरे पर और सदा सिकुड़े हुए भाव पर गरीबी और परेशानी की छाया साफ-साफ दिखने लगी। लड़की के सामने जब पिता अपराधी हो, तो उस अपराध के लिए उसका पछतावा क्या छिपाया जा सकता है? रामसुन्दर समधियाने में जब इजाजत प्राप्त करने के बाद किसी दिन क्षण-भर के लिए किसी तरह लड़की से मिलते तब उनकी छाती किस कदर फटती, सो तो उनकी हंसी से ही मालूम हो जाता।

महज अपने पिता के दुखी दिल को तसल्ली देने के लिए ही कुछ दिन से निरुपमा मायके जाने को अधीर हो उठी है। पिता के सूखे चेहरे को देखकर अब वह उनसे दूर नहीं रह सकती।

एक दिन पिता से उसने कहा, “बापूजी, मुझे घर ले चलो।”

पिता ने कहा, “अच्छी बात है।”

किन्तु, उनका कोई बस नहीं था। अपनी लड़की पर पिता का जितना स्वाभाविक अधिकार होता है, मानो दहेज के रुपयों के बदले उसे गिरवी रख देना पड़ा हो। और तो क्या, लड़की से मिलने के लिए भी, बहुत ही

संकोच के साथ, भीख-सी मांगनी पड़ती है और किसी-किसी दिन तो मनाही हो जाने पर फिर दूसरी बार कहने का मुंह ही नहीं रह जाता।

किन्तु, लड़की जब स्वयं मायके आना चाहती है तब भला बाप उसे बिना ले जाए कैसे रह सकता है? समधी की सेवा में इस बात की दरखास्त पेश करने के पहले रामसुन्दर ने उनके आगे कितनी दीनता, कितना अपमान और कितना नुकसान उठाकर तीन हजार रुपये इकट्ठे किए थे, उस इतिहास का छिपा रहना ही अच्छा है।

रामसुन्दर तीन हजार के नोट रूमाल में लपेटकर, उसे अच्छी तरह चादर में बांधकर समधी के पास जाकर बैठे। पहले तो मुंह पर हंसी लाकर मुहल्ले की बात छेड़ी। फिर हरेकृष्ण के घर जो बड़ी भारी चोरी हो गई थी उसका शुरू से आखिर तक किस्सा सुनाया। नवीनमाधव और राधामाधव, दोनों भाइयों की तुलना करके उनकी विद्याबुद्धि और स्वभाव के बारे में राधामाधव की प्रशंसा और नवीनमाधव की निन्दा की। शहर में एक नई बीमारी फैली है उसके बारे में बहुत-सी अजीब-अजीब बातें कहीं, और फिर अन्त में चादर को एक किनारे से रखकर बातों-ही-बातों में बोले, "हें, हें, बाबू साहब, आपके रुपये तो अभी बाकी ही हैं। जब आता हूं, तभी सोचता हूं कि कुछ लिए चलूं, पर चलते वक्त खयाल ही नहीं रहता। अब तो, भाई, बूढ़ा हो चला हूं।" इस तरह एक लम्बी भूमिका बांधते हुए पसली की तीन हड्डियों के समान उन तीन नोटों को मानो बहुत ही आसानी से बड़ी लापरवाही से निकाला। ले-देकर सिर्फ तीन हजार के नोट देखकर रायबहादुर ठहाका मारकर हंस पड़े और बोले, "अजी, रहने दो इन्हें, अपने पास ही रहने दो, मुझे नहीं चाहिए।" और एक प्रचलित कहावत का उल्लेख करके उन्होंने कहा कि "जरा-से के वास्ते अब क्या हाथ गन्दे करें!"

इतनी बात हो जाने के बाद लड़की को विदा कराने की बात और किसी के मुंह से शायद नहीं निकलती, किन्तु रामसुन्दर ने सोचा, रिश्तेदारी का संकोच अब मेरे लिए शोभा नहीं देता। हृदय में गहरी चोट

पहुंचने के कारण कुछ देर तो वे चुप रहे फिर अन्त में उन्होंने नरमाई से उस बात का जिक्र किया।

रायबहादुर ने किसी कारण का उल्लेख किए बिना ही कहा, "विदा तो अभी नहीं हो सकती।"

इतना कहकर वे किसी काम से बाहर चले गए।

रामसुन्दर कांपते हुए हाथों से उन नोटों को चादर के छोर में बांधकर, लड़की को मुंह न दिखाकर, सीधे घर लौट आए और मन-ही-मन कसम खा ली कि 'जब तक पूरे रुपये चुकाकर लड़की पर अपना हक नहीं पा जाता तब तक समधी के घर न जाऊंगा।'

बहुत दिन बीत गए। निरुपमा बाप को बुलाने के लिए आदमी-पर-आदमी भेजती रही, किन्तु घर पर कभी वे मिले ही नहीं। बहुत दिनों से अपने 'बापूजी' को न देख पाने से भीतर-ही-भीतर वह घुलने लगी। आखिर उसने आदमी भेजना भी बन्द कर दिया, और तब बाप के मन में बड़ी चोट लगी, किन्तु फिर भी वे लड़की के घर नहीं गए।

कुआर का महीना आया। रामसुन्दर ने कहा, "अब की बार पूजा में लड़की को जरूर बुलाऊंगा, नहीं तो मैं..."

बड़ी कड़ी प्रतिज्ञा कर बैठे।

दुर्गा-पूजा की पंचमी के दिन रामसुन्दर फिर चद्दर के छोर में कुछ नोट बांधकर चलने की तैयारी करने लगे।

इतने में पांच साल का पोता आकर कहने लगा, "बाबा, मेरे लिए गाड़ी खरीदने जा रहे हो?"

बहुत दिनों से उसे रबर के पहियों की ठेलागाड़ी पर चढ़कर हवा खाने का शौक हुआ है, किन्तु किसी भी तरह वह पूरा नहीं हो रहा। छह वर्ष की एक पोती ने आकर रोते-रोते कहा, "पूजा के न्योते में जाने के लिए मेरे पास एक भी अच्छी धोती नहीं है, बाबा!"

रामसुन्दर यह सब जानते थे और इस बारे में उठते-बैठते बहुत कुछ

सोच भी रहे थे। और साथ ही इस सोच में भी पड़े हुए थे कि रायबहादुर के घर से कहीं पूजा का न्योता आ गया तो क्या अपनी बहुओं को वहां इसी तरह मामूली गहने पहनकर मेहरबानियां पाए हुए गरीब की तरह जाना पड़ेगा? ये सब बातें सोचते हुए उन्हें बहुत-सी गहरी सांसें लेनी पड़ीं, पर उससे उनके माथे पर सिकुड़न पड़ने के सिवा और कोई नतीजा नहीं निकला।

गरीबी से तबाह अपने घर का रोना कानों में लिए हुए रामसुन्दर ने समधी के घर कदम रखा। आज उनमें संकोच का भाव नहीं था। दरबान और नौकरों के मुंह की तरफ देखने से पहले जैसे उन्हें झिझक होती थी, अब वह बात नहीं रही। अब तो वे ऐसे घुसे जैसे अपने ही घर में घुस रहे हों। भीतर जाकर उन्होंने सुना कि रायबहादुर घर में नहीं हैं, कुछ देर बैठना पड़ेगा। रामसुन्दर मन की उमंग को रोक न सके, लड़की से भेंट की। मारे आनन्द के उनकी आंखों से टप-टप आंसू गिरने लगे। बाप भी रोए, बेटी भी रोई। किसी के मुंह से बात नहीं निकली। इसी तरह कुछ समय बीत गया। बहुत देर बाद रामसुन्दर ने कहा, "अबकी बार तुझे जरूर लिवा ले चलूंगा, बेटी, अब कोई अड़चन नहीं।"

रामसुन्दर का बड़ा लड़का हरमोहन अपने दोनों छोटे बच्चों को साथ लेकर सहसा घर में आ घुसा। और पिता से बोला, "बापूजी, तो क्या हमें अब रास्ते का भिखारी ही बनना पड़ेगा?"

रामसुन्दर सहसा गुस्से से भर उठे, बोले, "तो तुम लोगों के लिए क्या मैं नरकगामी बनूं! मुझे तुम लोग अपने सच का पालन नहीं करने दोगे!"

रामसुन्दर ने अपना मकान बेच डाला था और इस बात का भी उन्होंने ठीक और काफी इन्तजाम कर लिया था कि लड़कों को किसी तरह मालूम न पड़े, किन्तु आश्चर्य है, फिर भी उन्हें मालूम पड़ ही गया। इससे लड़कों पर उन्हें इतना गुस्सा आया कि आपे से बाहर हो गए। लड़के के साथ पोता भी था, वह भी उनके दोनों घुटनों को जोर से पकड़कर मुंह उठाकर कहने लगा, "बाबा, मेरी गाड़ी?"

रामसुन्दर सिर झुकाए खड़े रहे। कोई जवाब न पाकर बच्चा निरुपमा के पास दौड़ा गया, बोला, "बुआजी, मुझे एक गाड़ी ले दोगी?" निरुपमा सब समझ गई बोली, "बापूजी, अगर तुमने एक पैसा भी मेरे ससुर को दिया, तो फिर तुम अपनी बेटी को जिन्दा न पाओगे, मैं तुम्हारी देह छूकर कहती हूं।"

"छिः बेटी, ऐसा नहीं कहते। अगर मैं रुपया न दे सका तो इसमें तेरे बाप की ही बेइज्जती है, और तेरी भी।"

"बेइज्जती तो रुपया देने में है। तुम्हारी बेटी की क्या कोई इज्जत नहीं? मैं क्या सिर्फ एक रुपये की थैली हूं, जब तक रुपया है तभी तक मेरी कीमत है! नहीं, बापूजी रुपये देकर तुम मेरा अपमान न करो। और फिर तुम्हारे दामाद तो रुपये चाहते नहीं।"

"तो फिर ये तुझे विदा जो नहीं करेंगे, बेटी!"

"न करें तो तुम क्या करोगे बताओ? तुम भी विदा कराने मत आना।"

रामसुन्दर कांपते हुए हाथों से नोट बंधे दुपट्टे को कंधे पर डालकर फिर चोर की तरह सबकी निगाह बचाकर घर लौट गए।

किन्तु, यह बात किसी से छिपी न रही कि रामसुन्दर रुपये लेकर आए थे और लड़की के मना कर देने से बिना दिए ही चले गए। किसी नटखट दासी ने कान लगाकर ये बातें सुन ली थीं और सास से कह दी थीं। सुनकर सास मारे गुस्से के आपे से बाहर हो गईं।

निरुपमा के लिए उसकी ससुराल कांटों की शय्या हो उठी। एक तो पति ब्याह के थोड़े दिन बाद ही डिप्टी-मजिस्ट्रेट होकर परदेस चले गए थे, दूसरे, इस खयाल से कि मिलने-जुलने से बेटी में कहीं ओछापन न आए, अब उसका मायकेवालों से मिलना-जुलना भी बन्द कर दिया गया।

इस बीच में निरुपमा एक बार बहुत ज्यादा बीमार पड़ गई। किन्तु इसके लिए केवल उसकी सास को ही अपराधी नहीं ठहराया जा सकता। स्वयं निरुपमा भी अपनी सेहत की तरफ से बड़ी लापरवाह हो गई थी। कार्तिक के महीने में, जबकि काफी ओस पड़ती है, सारी रात वह सिरहाने

की खिड़की खोलकर सोती और रात-भर उघाड़ी पड़ी रहती थी। खाने-पीने का भी कोई ठीक नहीं था। दासियां कभी-कभी कलेवा लाना भूल जातीं तो वह अपने मुंह से याद भी न दिलाती थी। उसके मन में यह बात खूब गहराई तक बैठ गई थी कि वह इस घर की दासी है, मालिक-मालकिन की मेहरबानी पर जिन्दगी बसर कर रही है। किन्तु यह भाव भी उसकी सास को बरदाश्त न था। अगर खाने-पीने में बहू की तरफ से कोई लापरवाही देखती, तो झट कह बैठती, "नवाब की बेटी है न! गरीब के घर का खाना क्यों रुचने लगा।" कभी कहती, "देखो जरा शकल तो देखो, कैसी हो रही है! दिनों-दिन जली लकड़ी जैसी हो रही हो!"

अन्त में एक दिन निरुपमा ने सास से बड़ी विनती के साथ कहा, "मां, बापूजी और भाइयों को एक बार बुलाकर दिखा दो न, मां!"

सास बोली, "बस, सब मायके जाने के ढंग हैं!"

कहने से कोई विश्वास नहीं करेगा, किन्तु बात सच है कि जिस दिन शाम के वक्त निरुपमा की उलटी सांस चलने लगी, उसी दिन पहले-पहल उसे डाक्टर ने देखा और वही दिन उसके इलाज का आखिरी दिन हुआ।

घर की बड़ी बहू मरी है, लिहाजा खूब धूमधाम के साथ अन्त्येष्टि-क्रिया की गई। प्रतिमा-विसर्जन के समारोह के सम्बन्ध में जैसी राय चौधरी की लोकप्रसिद्ध प्रतिष्ठा है, बड़ी बहू की दाहक्रिया के विषय में भी रायबहादुर की वैसी ही नामवरी हो गई। ऐसी चन्दन की लकड़ियों की चिता आज तक किसी ने देखी ही न थी, फिर श्राद्ध भी ऐसे ठाट-बाट से हुआ कि जो सिर्फ रायबहादुर के घर ही सम्भव था। सुनते हैं, इसमें वे कुछ कर्जदार भी हो गए थे।

रामसुन्दर को सान्त्वना देते समय, लोग उनकी लड़की का कैसे धूमधाम के साथ दाह हुआ, उसी का विस्तार से वर्णन करने लगे।

इधर डिप्टी-मजिस्ट्रेट की चिट्ठी आई कि 'मैंने यहां मकान वगैरह का सब इन्तजाम कर लिया है, अब जल्दी बहू को भेज दो।'

रायबहादुर की रायबहादुरीन ने जवाब दिया कि 'बेटा, तुम्हारे लिए

अब दूसरी लड़की से सगाई तय कर ली गई है, सो तुम जल्दी छुट्टी लेकर यहां चले आओ।'

अब की बार लड़के के ब्याह में रायबहादुर को बीस हजार रुपये नकद मिले और वे हाथों-हाथ वसूल भी हो गए।

दुलहिन

बहुत पुरानी बात है। बचपन में जिस स्कूल में मैं पढ़ता था उसमें नीचे के दरजे में पंडित शिवनाथ से हम लोग पहाड़ा पढ़ा करते थे। उनकी दाढ़ी-मूंछें सफाचट, सिर के बाल जड़ तक छंटे हुए और उस पर छोटी-सी चोटी शोभा पाया करती थी। उन्हें देखते ही लड़कों की जान सूख जाती थी।

प्राणियों में अकसर यह बात देखने में आती है कि जिनके डंक हैं, उनके दांत नहीं होते। पर हमारे पंडितजी में दोनों बातें एक-साथ मौजूद थीं। एक ओर उनके थप्पड़-घूसे हम पौधों पर ओलों की तरह बरसते तो दूसरी ओर सख्त वचन सुनकर सबको छठी की याद आ जाती।

पंडितजी को इस बात का बड़ा अफसोस था कि 'गुरु-शिष्य का सम्बन्ध अब पुराने जमाने जैसा नहीं रहा, विद्यार्थी अब देवता के समान गुरु की भक्ति नहीं करते।' इस तरह अपना अफसोस जाहिर करके वे अपनी उपेक्षित देव-महिमा को बालकों के सिर पर जोरों से पटक दिया करते, और कभी-कभी गहरा हुंकार भरते, किन्तु उसके भीतर इतनी ओछी बातें मिली रहतीं कि उसे देवता के वज्र की आवाज का दूसरा रूप समझ लेने का भ्रम किसी को नहीं होता।

खैर, कुछ भी हो, हमारे स्कूल का कोई भी लड़का इस तीसरे दरजे के दूसरे विभाग के देवता को इन्द्र, चन्द्र, वरुण अथवा कार्तिक न समझता था। सिर्फ एक ही देवता के साथ उनकी तुलना होती थी, जिसका कि

नाम यमराज है, और इतने दिनों बाद अब तो यह मानने में कोई दोष ही नहीं और न डर है कि हम लोग मन-ही-मन चाहते थे कि उक्त देवालय जाने में अब वे ज्यादा देर न करें तो अच्छा है।

पर इतना तो हम लोगों ने अच्छी तरह समझ लिया था कि नरदेवता के समान दूसरी बला नहीं। देवलोक में रहनेवाले देवता बखेड़ा नहीं करते। पेड़ से दो-एक फूल तोड़कर चढ़ा लेने से वे खुश हो जाते हैं, और न दो तो तकाजा नहीं करते। किन्तु हमारे पंडित देवता बहुत अधिक की आशा रखते थे, और हमसे जरा भी गलती हो जाती तो वे लाल-लाल आंखें निकालकर मारने दौड़ते थे। उस समय वे किसी भी तरफ से देवता जैसे नहीं दिखाई देते।

लड़कों को तकलीफ देने के लिए हमारे शिवनाथ पंडित के पास एक हथियार था, जो सुनने में मामूली, किन्तु वास्तव में बहुत खतरनाक था। वे लड़कों के नए-नए नाम रखा करते थे। नाम यद्यपि शब्द के सिवा और कुछ भी नहीं, पर, आदमी जो अपने से अपने नाम को ज्यादा चाहता है! अपने नाम की प्रसिद्धि के लिए लोग क्या-क्या कष्ट नहीं सहा करते? यहां तक कि नाम की रक्षा के लिए लोग मरने से भी नहीं हिचकिचाते।

नाम पर मर मिटनेवाले मानव के नाम को बिगाड़ देना उसकी जान से भी प्यारी जगह पर चोट पहुंचाना है। और तो क्या, जिसका नाम 'भूतनाथ' है उसे अगर 'नलिनीकान्त' कहा जाए, तो उसके लिए भी यह बरदाश्त के बाहर है।

इससे एक खास तत्त्व की जानकारी होती है, वह यह कि आदमी चीज की अपेक्षा नाचीज को ज्यादा कीमती समझता है; यानी, सोने-चांदी की अपेक्षा बात को, प्राणों की अपेक्षा मान को, अपने नाम को अपने से बड़ा मानता है।

मानव-स्वभाव के अन्दरूनी इस गूढ़ नियम के बस में होकर पंडितजी ने जब शशिशेर का नाम 'छछून्दर' रख दिया, तब वह बेचारा बहुत ही दुखी हुआ। खासकर इसलिए उसके मन का दर्द और भी बढ़ गया कि

वैसे नामकरण की वजह से उसके चेहरे पर खासतौर से गौर किया जाता था। फिर भी बहुत ही शान्त भाव से, सब सहते हुए, उसे चुपचाप बैठा रहना पड़ा।

पंडितजी ने आशुतोष का नाम रखा था 'दुलहिन', और इस नाम के साथ थोड़ा-सा इतिहास भी है।

आसू अपने दरजे में बहुत ही सीधा-सादा और भोला-भाला लड़का था। वह हमेशा चुप रहता, लड़ना-झगड़ना तो उसकी जन्मपत्री में ही नहीं लिखा था। बड़ा झेंपू था। उमर में भी शायद वह सबसे छोटा था, सभी बातें सुनकर मुस्कुरा देता था; किन्तु पढ़ता खूब था। स्कूल के बहुत-से लड़के उसके साथ मित्रता करने को उत्सुक थे। पर वह किसी के साथ खेलता न था। छुट्टी होते ही तुरत-फुरत घर चला जाता था।

दोपहर को एक बजे के करीब उसके घर की महरी एक दोने में कुछ मिठाई और छोटे-से गिलास में पानी लेकर आया करती। आसू को इसके लिए बड़ी शर्म मालूम होती, वह सोचता कि महरी किसी तरह घर लौट जाए तो वह जी जाए। वह नहीं चाहता था कि इस बात को कोई जाने कि स्कूल के छात्र के अलावा वह और भी कुछ है। मानो उसके लिए यह बहुत ही छिपाने की बात थी कि वह घर का कोई है, अपने मां-बाप का लड़का है, भाई-बहनों का भाई है। इस विषय में हमेशा उसकी यही कोशिश रहती कि कोई लड़का उसकी कोई भी बात जान न ले।

पढ़ने-लिखने में उसकी कोई गलती न होती थी, सिर्फ किसी-किसी रोज स्कूल आने में जरा कुछ देर हो जाया करती थी। शिवनाथ पंडित जब उससे कारण पूछते, तो वह उसका कोई सही उत्तर न दे सकता था। इसके लिए कभी-कभी उसे बड़ी फटकार सहनी पड़ती थी। पंडितजी उसे घुटनों पर हाथ रखकर पीठ नीची करके दालान की सीढ़ियों पर खड़ा कर देते थे, और चारों दरजों के लड़के उस झेंपू लड़के को उस हालत में देखा करते थे।

एक दिन ग्रहण की छुट्टी थी। उसके दूसरे दिन, स्कूल में चौकी पर बैठे हुए पंडितजी ने देखा कि एक सिलेट और स्याही लगे बस्ते में पढ़ने की किताबें लपेटे हुए, और दिनों की अपेक्षा बहुत सिकुड़े भाव से, आसू क्लास में घुस रहा है।

शिवनाथ पंडित ने सूखी हंसी हंसते हुए कहा, "अच्छा, 'दुलहिन' आ गई क्या?"

पढ़ाई खत्म होने पर छुट्टी होने के पहले उन्होंने सब लड़कों को सम्बोधन करके कहा, "सूनो रे, सब कोई सुनो..."

पृथ्वी की समूची मध्याकर्षण-शक्ति जोरों से बालक को नीचे की ओर खींचने लगी, फिर भी छोटा-सा आसू अपनी बेंच पर धोती का एक छोर और दोनों पैर लटकाए हुए सब लड़कों का लक्ष्य-स्थल बना बैठा रहा। अब तक तो आसू की काफी उमर हो चुकी होगी और उसके जीवन में बहुत-से भारी-भारी सुख-दुख और शर्म के दिन भी आए होंगे, किन्तु उस दिन के मासूम दिल के इतिहास के साथ और किसी दिन की तुलना नहीं हो सकती। हालांकि बात बहुत छोटी-सी है और दो शब्दों में खत्म हो जाती है, फिर भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि उसमें एक रहस्य है।

आसू की एक छोटी बहन थी, उसके बराबर की कोई साथिन या बहन न थी, इसलिए वह आसू के साथ ही खेला करती थी।

लोहे की रेलिंग से घिरा हुआ गेटवाला आसू का मकान है। सामने गाड़ी ठहरने के लिए बरांडा है। उस दिन खूब वर्षा हो रही थी। जूते हाथ में लिए सिर पर छतरी ताने जो दो-चार आदमी सामने से जा-आ रहे थे, उन्हें किसी भी तरफ ताकने की फुरसत न थी। बादलों के उस अंधेरे में, वर्षा के झमझम शब्द में, तमाम दिन की छुट्टी में, गाड़ी-बरांडे के नीचे की सीढ़ियों पर बैठा आसू अपनी बहन के साथ खेल रहा था।

उस दिन उनके गुड्डा-गुड़ियों का ब्याह था। उसी की तैयारी के बारे में आसू बहुत ही गम्भीरता के साथ अपनी बहन को उपदेश दे रहा था।

अब सवाल उठा कि पुरोहित किसे बनाया जाए? बालिका चट्-से

दौड़ी गई और सामने खड़े एक आदमी से पूछने लगी, "क्यों जी, तुम हम लोगों के पुरोहित बनोगे?"

आसू ने पीछे मुंह फेरकर देखा कि शिवनाथ पंडित अपनी भीजी छतरी समेटे पानी से तरबतर बरामदे में खड़े हैं। रास्ते से जा रहे थे, वर्षा ज्यादा होने से यहां ठहर गए हैं। बालिका उनसे पुरोहित बनने के लिए आग्रह कर रही है।

पंडितजी को देखते ही आसू अपने खेल और बहन, दोनों को छोड़-छाड़कर एक दौड़ में मकान के अन्दर भाग गया। उसका छुट्टी का दिन बिलकुल ही मिट्टी में मिल गया।

दूसरे दिन शिवनाथ पंडित ने जब सूखी हंसी के साथ भूमिका के रूप में इस घटना का उल्लेख करके आसू का नाम 'दुलहिन' रख दिया, तब उसने, पहले जैसे सभी बातों में मुस्कुरा देता था, वैसे ही मुस्कुराकर, अपने चारों तरफ की हंसी में शामिल होने की कोशिश की। इतने में घंटा बज गया, सब दरजों के लड़के बाहर चले गए, और एक कोने में थोड़ी-सी मिठाई और चमकते हुए फूल के गिलास में पानी लिए हुए महरी दरवाजे पर आ खड़ी हुई।

उस समय हंसते-हंसते उसका मुंह और कान सुर्ख हो उठे, दर्द में डूबे माथे की नसें फूल उठीं, तेजी से निकलते हुए आंसू रोके न रुक सके।

पंडितजी आरामघर में जलपान करके निश्चिन्त मन से हुक्का पीने लगे। लड़के बड़े आनन्द से आसू को घेरकर 'दुलहिन' 'दुलहिन' कहकर हल्ला मचाने लगे। छुट्टी के दिन का अपनी छोटी बहन के साथ खेला हुआ वह खेल आसू की नजर में अपने जीवन का एक सबसे बढ़कर शर्म से भरा भ्रम मालूम होने लगा। उसे विश्वास ही न हुआ कि दुनिया के आदमी कभी भी उस दिन की बात को भूल जाएंगे।

सजा

दुक्खी और छदामी कोरी, दोनों भाई सवेरे उठकर जब हंसिया-गंड़ासा हाथ में लिए काम पर निकले तब उन दोनों की बहुओं में खूब जोर की लड़ाई शुरू हो चुकी थी। मुहल्लेवाले प्रकृति की और-और प्रकार की खटपट और शोर-शराबे की तरह इस घर के कलह और उससे पैदा हुए शोरगुल के आदी हो गए थे। जोर की चीख-चिल्लाहट और नारी-कंठ की गाली-गलौज कान में पड़ते ही लोग आपस में कहने लगते, 'लो, हो गया शुरू' यानी जैसी कि आशा थी, आज भी उस स्वाभाविक नियम में कोई फर्क नहीं पड़ा। सवेरा होते ही पूरब में सूरज निकलने पर जैसे कोई उसका कारण नहीं पूछता, ठीक वैसे ही कोरियों के इस घर में जब दोनों बहुओं में तकरार और गाली-गलौज शुरू हो जाती, तो फिर उसका कारण जानने के लिए मुहल्ले में किसी को भी रत्ती-भर आश्चर्य नहीं होता।

हां, इतना जरूर है कि कलह-आन्दोलन पड़ोसियों की अपेक्षा दोनों पतियों को ज्यादा परेशान करता है, किन्तु फिर भी वे उसे किसी खास दिक्कत में नहीं गिनते। उनके मन का भाव ऐसा है, मानो दोनों भाई संसार-यात्रा का लम्बा सफर किसी इक्के में बैठकर तय कर रहे हैं; और उनके दोनों बिना कमानी के पहियों के लगातार घड़घड़-खड़खड़ शब्द को उन्होंने जीवन-रथयात्रा के बाकायदा नियमों में ही शामिल कर लिया है। बल्कि, घर में जिस रोज कोई शोरगुल नहीं होता, चारों ओर सन्नाटा-सा रहता है, उस दिन कब क्या आफत आ खड़ी हो, कोई कुछ अन्दाज लगाकर नहीं कह सकता।

हमारी कहानी की घटना जिस दिन से शुरू होती है उस दिन शाम को दोनों भाई मेहनत-मजूरी करके हारे-थके जब घर लौटे, तो देखा कि घर में सन्नाटा छाया हुआ है।

बाहर भी काफी उमस है। दोपहर को एक बार खूब जोर से पानी बरस चुका है और अब भी बादल घुमड़ रहे हैं। हवा का नामो-निशान तक नहीं, वर्षा से घर के चारों तरफ का जंगल और घास-पौधे वगैरह बहुत बढ़ गए हैं, वहां से, और पानी में डूबे हुए पटसन के खेतों में से एक तरफ की घनी बदबूदार भाप-सी निकल रही है; और उसने चारों तरफ मानो एक निश्चल चारदीवारी-सी खड़ी कर दी है। गुहाल के बगलवाली छोटी-सी तलैया में मेंढक टर्र-टर्र कर रहे हैं, और शाम का सूना आकाश मानो झींगुरों की झनकार से बिलकुल भर-सा गया है।

पास ही बरसात की पद्मा नदी नए बादलों से छाई हुई होकर बेहद ठहरी और भयंकर रूप धारण करके आजादी से बह रही है। ज्यादातर खेतों को नष्ट करके वह बस्ती के करीब तक आ पहुंची है। यहां तक कि उसने आसपास के दो-चार आम-कटहल के पेड़ तक उखाड़कर गिरा दिए हैं, और उनकी जड़ें पानी से बाहर दीख रही हैं। मानो वे अपनी मुट्ठी की उंगलियों को आकाश में फैलाकर किसी आखिरी सहारे को पकड़ने की कोशिश कर रही हों।

दुक्खी और छदामी उस दिन गांव के जमींदार के यहां बेगार खटने गए थे। उस पार की रेती पर धान पक गए हैं। बरसात के पानी में डूब जाने के पहले ही धान काट लेने के लिए देश के गरीब किसान और मजदूर सब कोई अपने-अपने खेत के कामों में या पटसन काटने में लग गए हैं। सिर्फ इन दोनों भाइयों को जमींदार के लोग जबरदस्ती बेगारी में पकड़ ले गए थे। जमींदार की कचहरी के छप्पर में से जगह-जगह पानी चू रहा था। उसकी मरम्मत के लिए कुछ टट्टियां बनाने के लिए वे दिन-भर कड़ी मेहनत करते रहे हैं। खाने तक की छुट्टी न मिली कि घर आकर पेट में कुछ डाल जाते, कचहरी की तरफ से थोड़े-से चने खाने को

मिल गए थे। बीच-बीच में मेह में भी भीगे हैं। हक की मजूरी भी मिल जाती सो भी नहीं, बल्कि उसके बदले जो उन्हें गालियां और फटकार मिली है वह उनकी मजूरी से बहुत ज्यादा थी।

कीच-कद्दड़ और पानी में होकर बड़ी मुश्किल से दोनों भाई शाम को घर आए। देखा तो, छोटी बहू चन्दा जमीन पर आंचल बिछाए चुपचाप औंधी पड़ी है, आज के बदली के दिन की तरह उसने भी दोपहर को बहुत आंसू बरसाकर शाम होते-होते खामोश होकर अपने अन्दर जोरों की उमस कर रखी है। और बड़ी बहू राधा मुंह फुलाए दरवाजे पर बैठी थी; उसका डेढ़ बरस का छोटा बच्चा रो रहा था। अब दोनों भाइयों ने जब घर में पैर रखा तो देखा कि बच्चा नंग-धड़ंग आंगन में एक तरफ चित्त पड़ा सो रहा है।

भूखे दुक्खी ने आते के साथ ही कहा, "चल उठ, परोस खाने को।"

बड़ी बहू एकदम गरज उठी, मानो बारूद के बोरे में चिनगारी पड़ गई हो, "खाने को है कहां, जो परोस दूं? चावल तू दे गया था? मैं क्या आप कहीं जाकर रोजगार कर लाती!"

सारे दिन की थकावट और डांट-फटकार सहने के बाद बिना अन्न के बेमजा अंधेरे घर में जलती हुई भूख की आग पर स्त्री के रूखे वचन खासकर अन्तिम वाक्य का छिपा हुआ भद्दा श्लेष दुक्खी को सहसा न जाने कैसे बर्दाश्त के बाहर हो उठा।

क्रोधित बाघ की तरह वह फंसी हुई गम्भीर गरज के साथ बोला, "क्या कहा!" और उसी दम उसने हंसिया उठाकर स्त्राी के सिर पर जमा दिया।

राधा अपनी देवरानी के पास जाकर गिर पड़ी और पड़ते के साथ ही मर गई।

चन्दा के कपड़े खून से सराबोर हो गए। वह 'हाय अम्मा, क्या हो गया' कहकर चिल्ला उठी। छदामी ने आकर उसका मुंह दबा दिया। दुक्खी हंसिया फेंककर गाल पर हाथ रखके भौंचक्के की तरह जमीन पर

बैठ गया। लड़का जग गया और डर के मारे चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगा।

बाहर तब पूरी शान्ति थी। अहीरों के लड़के गाय-भैंस चराकर गांव को लौट रहे थे। उस पार की रेती पर जो लोग पके धान काटने गए थे, उनमें से पांच-पांच सात-सात जने एक-एक छोटी नाव पर बैठकर, इस पार आकर दिन-भर की मेहनत-मजूरी में मिले दो-चार पूला धान सिर पर लादे, लगभग सभी कोई अपने-अपने घर आ पहुंचे हैं।

गांव के रामलोचन चाचा डाकखाने में चिट्ठी डालकर घर लौट आए थे, और निश्चिन्त होकर चुपचाप बैठे तमाकू पी रहे थे। एकाएक उन्हें याद उठ आई—उनके शिकमी काश्तकार दुक्खी पर लगान के रुपये बाकी हैं। आज के दिन वह देने का वादा कर गया था। यह सोचकर कि अब वह घर आ गया होगा, रामलोचन कन्धे पर दुपट्टा डाल, छतरी उठा चल दिए।

दुक्खी-छदामी के घर में घुसते ही उनके रोंगटे खड़े हो गए। देखा तो, घर में दिया तक नहीं जल रहा है। आंगन में अंधेरा है, और उस अंधेरे में दो-चार काली मूर्तियां धुंधली दिखाई दे रही हैं। रह-रहकर बरामदे के एक कोने से रोने का धीमा शब्द सुनाई दे रहा है, और लड़का ज्यों-ज्यों 'अम्मा, अम्मा' पुकारता हुआ रोने की कोशिश कर रहा है त्यों-त्यों छदामी उसका मुंह दबाता जा रहा है। रामलोचन ने कुछ डरते हुए पूछा, "दुक्खी है क्या?"

दुक्खी अब तक पत्थर की मूर्ति की तरह चुपचाप बैठा था। उसका नाम लेकर पुकारते ही वह सिसक-सिसकके नासमझ बच्चे की तरह रोने लगा। छदामी झटपट बरामदे से उतरकर रामलोचन चाचा के पास आंगन में आ गया। रामलोचन ने पूछा, "औरतें लड़ाई करके मुंह फुलाए पड़ी होंगी, इसी से अंधेरा है क्या? आज तो दिन-भर चिल्लाती ही रही हैं।"

छदामी अभी तक, क्या करना चाहिए, कुछ भी सोच नहीं पाया था। तरह-तरह की असम्भव कल्पनाएं उसके दिमाग में चक्कर काट रही थीं। फिलहाल उसने यही तय किया था कि कुछ रात बीते लाश को कहीं गायब कर देगा। इसी बीच में चौधरी चाचा आ पहुंचे, जिसकी उसने

कल्पना भी नहीं की थी, चट्-से कोई ठीक जवाब न सूझा, वह कह बैठा, "हां, आज बहुत झगड़ा हो गया।"

चौधरी जी बरामदे की ओर बढ़ते हुए बोले, "लेकिन उसके लिए दुक्खी क्यों रो रहा है?"

छदामी ने देखा कि अब खैर नहीं, एकाएक वह कह बैठा, "तकरार करते-करते छोटी बहू ने बड़ी बहू के माथे पर हंसिया मार दिया है।"

मनुष्य आई हुई मुसीबत को ही बड़ा समझता है, उसके अलावा और भी कोई परेशानी आ सकती है—यह बात जल्दी उसके दिमाग में नहीं आती। छदामी उस समय सोच रहा था कि इस खतरनाक सत्य के पंजे से कैसे बचे? किन्तु झूठ उससे बढ़कर खतरा ला सकता है—इस बात का उसे होश ही न था। रामलोचन के पूछते ही चट्-से उसके दिमाग में एक जवाब सूझा, और उसी वक्त उसने उसे कह डाला।

रामलोचन चौंककर कह उठा, "ऐं! क्या कहा! मरी तो नहीं?"

छदामी ने कहा, "मर गई।" और तुरन्त उनके पांव पर गिर पड़ा।

चौधरी बड़े असमंजस में पड़ गए, सोचने लगे, 'राम-राम, ऐन शाम के समय कहां आ फंसे! अदालत में गवाही देते-देते जान निकल जाएगी।'

छदामी ने किसी भी तरह उनके पांव नहीं छोड़े, बोला, "चौधरी चाचा, अब मैं अपनी बहू को बचाने के लिए क्या करूं?"

मामले-मुकदमों के बारे में सलाह देने में रामलोचन गांव-भर के मुख्यमन्त्री थे। उन्होंने जरा सोचकर कहा, "देख, एक काम कर तू, अभी दौड़ा जा थाने में, कहना कि 'मेरे बड़े भाई दुक्खी ने शाम को घर आकर खाने को मांगा था, खाना तैयार नहीं था, सो उसने अपनी बहू के माथे में हंसिया मार दिया है।' मैं ठीक कहता हूं, ऐसा कहने से तेरी बहू बच जाएगी।"

छदामी का कंठ सूखने लगा, उठकर बोला, "चौधरी चाचा, बहू तो और भी मिल जाएगी, पर भाई को फांसी हो जाने पर फिर भाई नहीं मिलने का।" किन्तु जब उसने अपनी स्त्री पर दोष लगाया था, तब ये

बातें नहीं सोची थीं। घबराहट में एक बात मुंह से निकल गई, अब अलक्षित-भाव से उसका मन अपने लिए तरकीबें और तसल्ली इकट्ठा करने लगा।'

चाचा ने भी उसकी बात को युक्तिसंगत माना, बोले, "तो फिर जैसा हुआ है, वैसा ही कहना। सब तरफ से बचाव होना तो मुश्किल बात है।" इतना कहकर रामलोचन वहां से चल दिए। और देखते-देखते सारे गांव में हल्ला हो गया कि 'कोरियों के घर की चन्दा ने लड़ते-लड़ते गुस्से में आकर अपनी जेठानी जी के माथे में हंसिया दे मारा है।'

बांध टूटने पर जैसे बाढ़ आती है, वैसे ही गांव में पुलिस आ धमकी। अपराधी और निरपराध सभी कोई बहुत घबरा उठे।

छदामी ने सोचा कि जो रास्ता बना लिया है, उसी पर चलना ठीक होगा। उसने रामलोचन के सामने अपने मुंह से जो बात कह डाली है उस बात को गांव के सब लोग जान गए हैं। अब अगर दूसरी कोई बात कही जाए तो न जाने उसका क्या नतीजा निकले, क्या से क्या हो जाए! उसकी अकल चकरा गई। उसने समझ लिया कि किसी तरह अपने वचनों की रक्षा करते हुए उसमें और भी दो-चार बातें जोड़-जाड़कर बहू को भले ही बचाया जा सकता है, और कोई रास्ता नहीं।

छदामी ने अपनी बहू चन्दा से अनुरोध किया कि वह कसूर अपने ऊपर ले ले। सुनते ही उस पर मानो बिजली-सी पड़ गई। छदामी ने उसे तसल्ली देकर कहा, "मैं जो कह रहा हूं उसमें तुझे किसी बात का डर नहीं, हम लोग तुझे बचा लेंगे।" तसल्ली दी तो सही, पर उसका गला सूख गया, मुंह फक पड़ गया।

चन्दा की उम्र सत्रह-अठारह साल से ज्यादा न होगी। चेहरा भरा हुआ और गोल-मटोल, शरीर मंझोला, कसा हुआ, स्वस्थ और सबल, अंग-अंग के गठन में ऐसा एक सुडौलपन भरा हुआ है कि चलने-फिरने में, हिलने-डुलने में देह कहीं से भी जरा बेडौल नहीं मालूम देती। वह नई बनी

हुई नाव की तरह छोटी और सुडौल है, बहुत ही आसानी से सरकती है और उसकी कहीं भी कोई ग्रन्थि ढीली नहीं हुई। संसार के विषय में उसके अन्दर एक तरह का कौतूहल है, मुहल्ले में दूसरों के घर जाकर गपशप करना उसे बहुत पसन्द है, और कांख में पानी की गागर लिए पनघट आते समय वह दो उंगलियों से घूंघट में जरा-सा छेद करके चमकीली चंचल काली आंखों से रास्ते में जो कुछ देखने लायक चीज होती है उसे देख लिया करती है।

बड़ी बहू ठीक इससे उलटी थी। बहुत ही आलसिन, फूहड़ और बेशऊर। सिर का कपड़ा, गोद का लड़का, घर का काम कुछ भी उससे न सम्हलता था। हाथ में न तो कोई खास काम-काज होता और न फुरसत। छोटी बहू उससे ज्यादा कुछ कहती-सुनती न थी। हां, मीठे स्वर में दो-एक पैने दांत गड़ा देती, और वह हाय-हाय करके गुस्से में बकती रहती, और इस तरह मुहल्ले-भर की नाक में दम करती रहती।

इन दो दम्पतियों में भी स्वभाव की एक आश्चर्यजनक एकता थी। दुक्खी देह में कुछ लम्बा-चौड़ा, हट्टा-कट्टा है, चौड़ी हंड़िया-सी भद्दी नाक, आंखें ऐसी कि मानो इस दुनिया को वे अच्छी तरह समझतीं ही नहीं, और न उससे किसी तरह का सवाल ही करना चाहती हैं। ऐसा भोला-भाला किन्तु खतरनाक, ऐसा सबल किन्तु निरीह आदमी बिरला ही मिलेगा।

और छदामी तो ऐसा लगता है, जैसे किसी चमकीले काले पत्थर को बड़ी मेहनत से तराशकर मूर्ति बनाई गई हो। जरा भी कहीं अधिकता नहीं, कहीं भी जरा दचका तक नहीं पड़ा। बल और निपुणता ने मिलकर उसके प्रत्येक अंग को भरा-पूरा बना दिया है। चाहे तो नदी की ऊंची पाड़ पर से नीचे कूद पड़े, चाहे लग्गी चलावे, चाहे बांस की झाड़ियों में चढ़कर छांट-छांटकर उसकी टहनियां काट लावे; हर एक काम में उसकी पूरी होशियारी पाई जाती है, मानो सभी काम उसके लिए बहुत आसान हैं। बड़े-बड़े काले बालों में तेल डालकर और बड़े यत्न से उन्हें काढ़कर कन्धे तक लटकाए रहता है, देह की सजावट के विषय में उसका काफी ध्यान है।

और-और गांव की वधुओं के सौन्दर्य के प्रति यद्यपि उसकी उदासीन दृष्टि न थी, और अपने को उनकी निगाहों में खूबसूरत जंचाने की इच्छा भी उसकी काफी थी, फिर भी अपनी युवा पत्नी को वह जरा कुछ ज्यादा प्यार करता था। दोनों में कलह भी होता और मेल भी। कोई किसी को हरा नहीं सकता था। और भी एक कारण था, जिससे दोनों का बन्धन काफी मजबूत था। छदामी समझता था कि चन्दा जैसी नटखट प्रकृति की चंडूल स्त्री है, उस पर बहुत ज्यादा भरोसा नहीं करना चाहिए, और चन्दा समझती थी कि उसके मालिक की चारों तरफ निगाह दौड़ती रहती है, उसे अगर कुछ कसके न बांधा गया, तो किसी दिन हाथ से निकल जाने का डर है।

इस दुर्घटना के कई दिन पहले से स्त्री-पुरुष में बड़ी भारी तना-तनी चल रही थी। बात यह थी कि चन्दा ने देखा, उसका मालिक काम के बहाने कभी-कभी दूर चला जाता है, यहां तक कि दो-एक दिन बाहर बिताकर फिर घर लौटता है, और कुछ पैदा करके लाता नहीं। पति के लक्षण अच्छे न देखे तो वह भी कुछ ज्यादती करने लगी। उसने जब है तब पनघट जाना शुरू कर दिया और मुहल्ले-भर में घूम-फिरकर घर आकर काशीप्रसाद के मझले लड़के की बहुत ज्यादा व्याख्या करने लगी।

छदामी के दिन और रातों में मानो किसी ने जहर घोल दिया। काम-धन्धे में कहीं भी उसे घड़ी-भर के लिए चैन न पड़ता। इसके लिए एक दिन उसने भौजाई को बड़ी डांट-फटकार बताई।

जवाब में भौजाई ने हाथ हिला-हिलाकर झमक-झमककर उसके अनुपस्थित मृत पिता को सम्बोधित करके कहा, "वह औरत आंधी के आगे दौड़ती है, उसे मैं सम्हालूं! मैं तो जानती हूं, किसी दिन वो खानदान की नाक कटा बैठेगी!"

बगल की कोठरी में चन्दा बैठी थी, उसने बाहर आकर धीरे-से कहा, "जीजी, तुम्हें इतना डर क्यों है?"

बस, फिर क्या था, दोनों में खूब ठन गई।

छदामी ने आंखें घुन्नाकर कहा, “देख, अबकी अगर सुना कि तू अकेली पानी भरने गई है, तो तेरी हड्डी तोड़ दूंगा।”

चन्दा ने कहा, “तब तो मेरा कलेजा ही ठंडा हो जाए!” यह कहती हुई वह उसी वक्त बाहर जाने को तैयार हो गई।

छदामी ने लपककर चोटी पकड़के घसीटकर उसे कोठरी के भीतर ढकेल दिया और बाहर से दरवाजा बन्द कर दिया।

शाम को छदामी जब घर लौटा तो देखा कि कोठरी खुली पड़ी है, उसमें कोई भी नहीं! चन्दा तीन गांव पार करके सीधी अपनी ननसाल पहुंच गई थी।

छदामी बड़ी मुश्किल से मना-मुनूकर वहां से उसे घर ले आया, और अबकी बार उसने अपनी हार मान ली। उसने देख लिया कि जैसे अंजुली-भर पारे को मुट्ठी के अन्दर जोर से दबाकर रखना मुश्किल है वैसे ही इस स्त्री को भी मजबूती से पकड़ रखना असम्भव है, पारे की तरह यह भी दसों उंगलियों की संधों में से इधर-उधर छिटक पड़ती है।

उसने किसी तरह की जबरदस्ती नहीं की; किन्तु वह बड़ा अशान्त रहने लगा। इस नटखट पत्नी के प्रति उसका सदा शंका-भरा प्रेम तेज पीड़ा की तरह उसको दुख देने लगा। यहां तक कि कभी-कभी वह सोचता कि यह मर जाए तो निश्चिन्त होकर वह जरा शान्ति से रहे। आदमी से आदमी की जितनी जलन होती है, उतनी शायद यमराज से नहीं होती।

इसी बींच यह दुर्घटना हो गई।

चन्दा से जब उसके मालिक ने हत्या मंजूर कर लेने के लिए कहा, तो वह भौंचक्की होकर देखती रह गई। उसकी काली-काली दोनों आंखें काली आग की तरह चुपचाप अपने पति को दग्ध करने लगीं। उसका सारा शरीर और मन धीरे-धीरे सिकुड़कर पति-राक्षस के पंजे से निकल भागने की कोशिश करने लगा। उसकी सारी अन्तरात्मा विमुख होकर पति के खिलाफ विद्रोह ठान बैठी।

छदामी ने बहुत तसल्ली दी कि तुझे डरने की कोई बात नहीं। इसके बाद उसने थाने में और अदालत में मजिस्ट्रेट के सामने उसे क्या कहना होगा, बार-बार सिखा-पढ़ाकर सब ठीक कर दिया। मगर चन्दा ने उसकी लम्बी-लम्बी बातें कुछ भी नहीं सुनीं, पत्थर की मूर्ति की तरह वह चुपचाप बैठी रही।

सभी कामों में दुक्खी छदामी के भरोसे रहता है। छदामी ने जब उससे चन्दा पर सारा दोष मढ़ने की बात कही, तो उसने कहा, "फिर बहू का क्या होगा?"

छदामी ने कहा, "उसे मैं बचा लूंगा।"

भाई की बात सुनकर हट्टा-कट्टा दुक्खी निश्चिन्त हो गया।

छदामी ने अपनी बहू को सिखा दिया कि तू कहना, 'जिठानी मुझे हंसिया लेकर मारने आई थी, सो मैं भी उसे हंसिया उठाकर रोकने लगी, सो न जाने कैसे अचानक लग गई।' ये सब बातें रामलोचन की बनाई हुई थीं। इसके अनुकूल जिन-जिन वर्णनों और सबूतों की जरूरत थी वे सब बातें भी उन्होंने विस्तार के साथ छदामी को समझा दी थीं।

पुलिस आकर जोरों से तहकीकात करने लगी। लगभग सभी गांववालों के मन में यह बात तह तक बैठ गई थी कि चन्दा ने ही जिठानी की हत्या की है। प्रायः सभी गांववालों के बयानों से ऐसा ही साबित हुआ।

पुलिस की तरफ से चन्दा से जब पूछा गया, तो चन्दा ने कहा, "हां, मैंने ही खून किया है।"

"क्यों खून किया?"

'मुझे वह सुहाती नहीं थी।"

"कोई झगड़ा हुआ था?"

"नहीं।"

"वह तुम्हें पहले मारने आई थी?"

"नहीं।"

"तुम पर किसी तरह का जुल्म किया था?"

"नहीं।"

इस तरह का जवाब सुनकर सब दंग रह गए।

छदामी एकदम घबरा गया, बोला, "यह ठीक नहीं कह रही है। पहले बड़ी बहू..."

दारोगा ने बड़े जोर से डांटकर उसे चुप कर दिया। अन्त तक बार-बार नियमानुसार जिरह करने पर भी, वही एक ही तरह का जवाब मिला। बड़ी बहू की तरफ से किसी तरह का हमला होना चन्दा ने किसी भी तरह मंजूर नहीं किया तो नहीं ही किया।

ऐसी अपनी जिद की पक्की औरत शायद ही कहीं देखने में आती हो। एक रुख से जी-जान से कोशिश करके फांसी के तख्ते की तरफ झुकी जा रही है, किसी भी तरह रोके नहीं रुकती! यह कैसा खतरनाक रूठना है! चन्दा शायद मन-ही-मन कह रही थी कि 'मैं तुम्हें छोड़कर अपने इस नवयौवन को लेकर फांसी के तख्ते पर चढ़ जाऊंगी, फांसी की रस्सी को गले लगाऊंगी, मेरे इस जन्म का आखिरी बन्धन उसी के साथ है।'

बन्दिनी होकर चन्दा, एक भोली-भाली छोटी-सी चंचल कौतूहल-प्रिय गांव की वधू, चिरपरिचित गांव के रास्ते से, जगन्नाथ के मन्दिर के सामने से, बीच बाजार से, घाट के किनारे से, मजुमदारों के घर के सामने से, डाकखाना और स्कूल के बगल से, सभी परिचित लोगों की आंखों के सामने से, कलंक की छाप लिए हमेशा के लिए घर छोड़कर चली गई। लड़कों का एक झुंड पीछे-पीछे चला जा रहा था, और गांव की औरतें, उसकी सखी-सहेलियां, कोई घूंघट की संध में से, कोई दरवाजे की बगल से और कोई पेड़ की ओट में खड़ी होकर सिपाहियों से घिरी चन्दा को जाती देख शर्म से, घृणा से, डर से रोमांचित हो उठीं।

डिप्टी मजिस्ट्रेट के समाने भी चन्दा ने अपना ही कसूर कबूल किया। और 'दुर्घटना से पहले बड़ी बहू ने उस पर किसी तरह की ज्यादती या जुल्म किया था' यह बात उसके मुंह से किसी भी तरह निकली ही नहीं।

पर छदामी उस दिन गवाही के कठघरे में पहुंचते ही रो दिया और हाथ जोड़कर बोला, "दुहाई है, हजूर, मेरी बहू का कोई कसूर नहीं।"

हाकिम ने धमकाकर उससे उच्छ्‌वास को रोककर उससे सवाल करना शुरू कर दिया। उसने एक-एक करके सारा-का-सारा कच्चा चिट्ठा कह सुनाया।

किन्तु हाकिम ने उसकी बात पर विश्वास नहीं किया। कारण, मुख्य विश्वस्त और शरीफ गवाह रामलोचन ने कहा, "खून होने के थोड़ी देर बाद मैं घटनास्थल पर पहुंचा था। गवाह छदामी ने मेरे सामने सब कबूल करके मेरे पैरों पर गिरकर कहा था कि 'बहू को किस तरह बचाऊं, कोई रास्ता बताइए।' मैंने भला-बुरा कुछ भी नहीं कहा। गवाह ने मुझसे पूछा कि 'मैं अगर कहूं कि मेरे बड़े भाई ने खाने को मांगा था, सो उसने दिया नहीं, इस पर गुस्से में आकर भाई ने स्त्री को मार डाला, तो यह बच जाएगी?' मैंने कहा, 'खबरदार, हरामजादे, अदालत में एक हरूफ भी झूठ न बोलना, इससे बढ़कर महापाप और नहीं है।" इत्यादि-इत्यादि।

रामलोचन ने पहले चन्दा को बचाने के लिए बहुत-सी बातें गढ़ डाली थीं, किन्तु जब देखा कि चन्दा खुद ही अड़कर फंस रही है, तब सोचा कि 'अरे बाप रे, अन्त में कहीं मुझे ही झूठी गवाही के जुल्म में न पड़ना पड़े! इससे जितना जानता हूं उतना ही कहना अच्छा।' यह सोचकर उसने उतना ही कहा, बल्कि उससे भी कुछ ज्यादा कहने में कसर न रखी।

डिप्टी मजिस्ट्रेट ने मामला सेशन सुपुर्द कर दिया।

इस बीच में खेती-बारी, हाट-बाजार, रोना-हंसना आदि संसार के सभी काम चलने लगे। पहले की तरह फिर हरे धान के खेतों में सावन की बरसाती बौछार झरने लगी।

पुलिस मुलजिम और गवाहों को लेकर सेशन जज की अदालत में हाजिर हुई। इजलास में बहुत-से लोग अपने-अपने मुकदमे की पेशी की इन्तजारी में बैठे हैं। रसोईघर के पीछे की एक छोटी-सी गन्दी तलैया के कुछ हिस्से को लेकर एक मामला चल रहा है, जिसकी पैरवी के लिए

कलकत्ते से वकील बुलाए गए हैं, और फरियादी की तरफ से उनतालीस गवाह हाजिर हुए हैं। सब अपने-अपने हक-हिसाब का कौड़ी-कौड़ी, रत्ती-रत्ती बाल की खाल निकालनेवाला फैसला कराने के लिए व्याकुल होकर दौड़े आए हैं—उनकी धारणा है, फिलहाल उनके लिए इससे बढ़कर संसार में और कोई जरूरी काम नहीं है।

छदामी खिड़की में से रोजमर्रा की इस बेहद बेचैन दुनिया की तरफ एकटक देख रहा है, सबकुछ उसे सपना-सा मालूम होता है। अदालत के अहाते के भीतर के वटवृक्ष पर से एक कोयल बोल रही है, उनके यहां किसी तरह का संविधान, कानून और अदालत नहीं है।

चन्दा ने जज के सामने झुंझलाकर कहा, "अरे हजूर साहब, अब एक ही बात को बार-बार कितनी बार बताऊं?"

जज ने उसे समझाकर कहा, "तुम जिस कसूर को मंजूर कर रही हो उसकी सजा क्या है, जानती हो?"

चन्दा ने कहा, "नहीं।"

जज ने कहा, "उसकी सजा है फांसी, मौत!"

चन्दा ने कहा, "हजूर साहब, मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूं, मुझे तुम वही सजा दे दो, अब मुझसे सहा नहीं जाता।"

जब छदामी को अदालत में पेश किया गया, तो चन्दा ने उसकी तरफ से मुंह फेर लिया।

जज ने कहा, "सुनो, इधर गवाह की तरफ देखकर बताओ, यह तुम्हारा कौन लगता है?"

चन्दा ने दोनों हाथों से अपना मुंह ढंककर कहा, "यह मेरा मालिक लगता है।"

जज ने पूछा, "तुम्हें यह चाहता है?"

चन्दा ने जवाब दिया, "उफ्! बहुत ज्यादा चाहता है कि!"

जज ने पूछा, "तुम इसे नहीं चाहतीं?"

चन्दा ने जवाब दिया, "बहुत ज्यादा चाहती हूं कि!"

छदामी से जब पूछा गया, तो उसने कहा, "मैंने खून किया है।"

जज ने पूछा, "क्यों?"

छदामी ने कहा, "खाने को मांगा था, सो उसने दिया नहीं।"

दुक्खी गवाही देने आया तो वह मूर्च्छित हो गया। होश आने पर उसने जवाब दिया, "हजूर साहब, खून मैंने किया है।"

"क्यों?"

"खाने को मांगा था, सो उसने दिया नहीं था।"

बहुत जिरह करके तथा और-और गवाहों के बयान सुनकर जज साहब ने साफ-साफ समझ लिया कि घर की बहू को फांसी की बेइज्जती से बचाने के लिए ही दोनों भाई कसूर मंजूर कर रहे हैं।

किन्तु चन्दा थाने से लेकर सेशन-अदालत तक बराबर एक ही बात कहती आ रही है, उसकी बात में जरा भी कहीं फर्क नहीं पड़ा।

दो वकीलों ने ख़ुद आगे आकर उसे फांसी से बचाने के लिए बहुत कोशिश की, लेकिन अन्त में उन्हें हार माननी पड़ी।

जिस दिन जरा-सी उमर की एक काली-काली छोटी-मोटी लड़की अपना गोल-मटोल मुंह लिए, गुड्डा-गुड़िया फेंककर, अपना बाप-महतारी का घर छोड़कर ससुराल आई थी, उस दिन रात को शुभलग्न के समय आज के इस दिन की भला कौन कल्पना कर सकता था? उसका बाप मरते समय यह कहकर निश्चिन्त हुआ था कि 'खैर, कुछ भी हो, मेरी लड़की तो ठीक-ठिकाने से लग गई।'

जेलखाने में फांसी के पहले मेहरबान सिविल सर्जन साहब ने चन्दा से पूछा, "किसी को देखने की मन में है?"

चन्दा ने कहा, "एक बार अपनी मां को देखना चाहती हूं।"

डाक्टर ने कहा, "तुम्हारा मालिक तुम्हें देखना चाहता है, उसे बुलवा लिया जाए?"

चन्दा बोली, "हूं:ह्, मौत भी न आई?"

व्यवधान

नाते की दृष्टि से देखा जाए तो वनमाली और हिमांशुमाली, दोनों ममेरे-फुफेरे भाई हैं, सो भी बहुत हिसाब लगाने पर, किन्तु इन दोनों का परिवार बहुत दिनों से पड़ोसी रहा है। बीच में सिर्फ एक बगीचे का फासला है और इसीलिए इनका नाता नजदीक का न होने पर भी मेलजोल और घनिष्ठता काफी है। वनमाली हिमांशु से बड़ा है। जब दांत नहीं निकले थे और वह बोल भी न सकता था, तब वनमाली ने उसे गोद में लेकर इसी बगीचे में सुबह-शाम हवा खिलाई है, खेल सिखाया है, रोना बन्द कराया है, थपकियां देकर मीठी नींद सुलाया है और बच्चों को बहलाने के लिए परिणत-बुद्धि प्रौढ़ व्यक्तियों को जोर से सिर हिलाना और अंटसंट बोलना आदि जो भी कुछ उम्र के खिलाफ शरारत और जोर का प्रयत्न करना पड़ता है, उसमें भी वनमाली ने कोई बात उठा नहीं रखी।

वनमाली ज्यादा पढ़ा-लिखा नहीं है। उसे शुरू से ही बगीचे का शौक था, और था इस दूर के नाते के छोटे भाई पर प्यार का लगाव। वह उसे एक दुर्लभ और कीमती लता की तरह अपने दिल का प्यार सींचकर पाल रहा था। जब वह लता उसके समूचे अन्तर-बाहर को ढंककर खूब फलने-फूलने लगी तब वनमाली अपने को धन्य समझने लगा।

आमतौर पर ऐसा देखने में नहीं आता, किन्तु कोई-कोई स्वभाव ऐसा होता है, जो एक छोटी-सी कल्पना या एक छोटे-से बच्चे या किसी बेमुरव्वत मित्र के लिए बड़ी आसानी से अपने को पूरी तरह बिखेर देता

है, और इस विशाल पृथ्वी पर सिर्फ एक छोटे-से प्यार के कारोबार में वह अपने जीवन का सारा मूलधन लगाकर निश्चिन्त हो जाता है। फिर, या तो वह जरा-से मुनाफे पर गहरे सन्तोष के साथ जीवन बिता देता है, या सहसा किसी दिन सवेरे अपना घर-द्वार सबकुछ बेचकर राह का भिखारी हो जाता है।

हिमांशु की उमर जब थोड़ी बढ़ गई तब, उम्र और नाते का काफी सिलसिला होने पर भी, वनमाली का उसके साथ मानो मित्रता का बन्धन कायम हो गया। दोनों में मानो छोटे-बड़े का कोई भेद ही न रहा।

ऐसा होने का एक कारण भी था। हिमांशु पढ़ता-लिखता था और उसकी ज्ञान की प्यास आदतन बहुत तेज थी। पुस्तक पाते ही वह पढ़ने बैठ जाता। इससे फालतू पुस्तकें भी बहुत पढ़ी गईं, फिर भी चाहे जैसे भी हो, चारों तरफ से उसके मन ने एक पूर्णता प्राप्त कर ली थी। वनमाली खास श्रद्धा के साथ उसकी बात सुनता, उससे सलाह लेता, उसके साथ छोटी-बड़ी सब बातों की चर्चा करता, किसी भी विषय में बालक समझकर कभी उसकी उपेक्षा न करता। दिल के पहले स्नेह-रस से जिसे पाल-पोसके आदमी बनाया गया हो, उम्र पाकर वही अगर अपनी बुद्धि, ज्ञान और ऊंचे स्वभाव के कारण श्रद्धा का अधिकारी बन जाए, तो उसके समान ऐसी बेहद प्यारी वस्तु संसार में शायद ही कोई हो।

बगीचे का शौक हिमांशु को भी था, किन्तु इस विषय में दोनों मित्रों में कुछ भेद था। वनमाली को था दिल का शौक और हिमांशु को बुद्धि का। जमीन के ये कोमल पौधे और लताएं, यह बेजान जीवन-राशि, जो आदर-जतन की जरा भी लालसा नहीं रखती और साथ ही जतन पाने पर घर के बाल-बच्चों की तरह बढ़ती रहती है, और जो आदमी के बाल-बच्चों से भी बढ़कर बच्चे हैं, उनको जतन से पाल-पोसकर बड़ा करने के लिए वनमाली में एक स्वाभाविक प्रवृत्ति थी, किन्तु हिमांशु में पेड़-पौधों के प्रति एक जिज्ञासु दृष्टि थी। अंकुर निकल आए, कुल्ले फूटने लगे, बौर लग गए, फूल खिलने लगे, इन सब बातों में उसका खूब मन लगता था।

बीज बोने, कलम लगाने, खाद देने, मचान बांधने आदि के विषय में हिमांशु को नई-नई बातें सूझतीं और वनमाली उन्हें बड़े आनन्द के साथ सुनता। इस बगीचे के लिए आकृति-प्रकृति के जितने प्रकार के भी संयोग-वियोग सम्भव हो सकते हैं, दोनों मिलकर सब करते।

दरवाजे के सामने बगीचे के बीच में एक पक्की वेदी-सी बनी थी। चार बजते ही वनमाली एक महीन कुरता पहनकर, चुना हुआ दुपट्टा कन्धे पर डालकर, हाथ में नलीदार हुक्का लिए वहीं छाया में जाकर बैठ जाता। कोई मित्र भी पास नहीं और न हाथ में कोई पुस्तक या अखबार। बैठा-बैठा हुक्का पीता और तिरछी निगाह से उदासीन भाव से कभी दाएं और बाएं देखा करता। इसी प्रकार उसका समय हुक्के के धुएं की तरह धीरे-धीरे बहुत ही हलका होकर उड़ जाता, शून्य में बिला जाता, कहीं भी उसका कोई निशान तक न रह जाता।

अन्त में जब हिमांशु स्कूल से लौटकर हाथ-मुंह धोकर कलेवा करके बगीचे में दिखाई देता, तब वह झटपट हुक्के की नली छोड़कर उठ बैठता। तब उसके आग्रह को देखकर सहज ही समझ में आ जाता कि अब तक वह किसके लिए बैठा-बैठा तसल्ली के साथ इन्तजार कर रहा था।

उसके बाद दोनों जने बगीचे में बातें करते हुए टहलते। अंधेरा हो आने पर दोनों बेंच पर बैठ जाते, दक्षिण की हवा पेड़ों के पत्तों को हिलाते हुई बही चली जाती, किसी-किसी दिन हवा चलती भी नहीं थी; पेड़-पौधे तस्वीर की तरह सतर खड़े रहते, सिर पर आकाश-भर में तारे चमकते रहते।

हिमांशु बातें करता, वनमाली चुपचाप सुनता रहता। जो बात समझ में न आती वह भी उसे अच्छी लगती। जो बातें और किसी के मुंह से बहुत बुरी और रूखी मालूम दे सकती थीं, वे ही बातें हिमांशु के मुंह से अच्छी लगतीं। ऐसे श्रद्धावान प्रौढ़ श्रोता के मिल जाने से हिमांशु की भाषण-शक्ति, स्मृति-शक्ति और कल्पना-शक्ति को खास लाभ होता। वह

कुछ पढ़कर कहता, कुछ सोचकर कहता और कुछ उसी समय बुद्धि में जो आता सो कह डालता, और कभी-कभी कल्पना की सहायता से अपने ज्ञान की कमी को ढंक भी लेता। बहुत-सी ठीक बातें कहता, बहुत-सी गलत भी कह डालता, किन्तु वनमाली सबको गम्भीरता से सुनता। बीच-बीच में दो-एक बात वह भी कहता, किन्तु हिमांशु उसकी बात काटकर जो उसे समझा देता उसी को वह ठीक समझ लेता, और दूसरे दिन छाया में बैठकर हुक्का पीता हुआ उन बातों को बहुत देर तक आश्चर्य के साथ सोचता रहता।

इतने में एक बखेड़ा उठ खड़ा हुआ। वनमाली और हिमांशु के मकान के बीच में एक पानी का नाला था। उस नाले में एक जगह एक नीबू का पेड़ पैदा हो गया। उस पेड़ पर जब फल लगते हैं, तो वनमाली का नौकर उन्हें तोड़ने की कोशिश करता है और हिमांशु का नौकर उसे रोकता है, और इस बारे में दोनों ओर से गाली-गलौज की जो वर्षा होने लगती है, उस वर्षा में अगर जरा भी तत्त्व होता तो शायद तमाम नाला भर जाता।

नतीजा यह हुआ कि वनमाली के पिता हरचन्द और हिमांशु के पिता गोकुलचन्द में इसी बात को लेकर तकरार हो गई। दोनों फरीक नाले के अधिकार का फैसला कराने के लिए अदालत पहुंचे।

वकील-बैरिस्टरों में जितने भी महारथी थे, सभी ने दोनों में से किसी-न-किसी का पक्ष लेकर वाक्युद्ध शुरू कर दिया। दोनों ओर से इतने रुपये खर्च हुए कि सावन-भादों की बरसात में उस नाले में से उतना पानी भी शायद कभी न बहा होगा।

अन्त में हरचन्द की जीत हुई। साबित हो गया कि 'नाला हरचन्द का ही है, और नीबू के पेड़ पर और किसी का कोई हक नहीं।' अपील हुई, किन्तु नाला और नीबू का पेड़ हरचन्द का ही रह गया।

जितने दिन मुकदमा चलता रहा, दोनों भाइयों की मित्रता में कोई फर्क न आया। इस आशंका से कि कहीं झगड़े की छाया उन्हें छू न ले, वनमाली दूनी गहराई से हिमांशु को अपने दिल के पास बांध रखने की

कोशिश करने लगा और हिमांशु ने भी जरा बेरुखी नहीं दिखाई।

जिस दिन अदालत से हरचन्द की जीत हुई उस दिन घर में, खासकर अन्तःपुर में, खुशियां मनाई जाने लगीं, सिर्फ वनमाली की आंखों में नींद नहीं रही। उसके दूसरे दिन करीब चार बजे वह उदास चेहरा लिए बगीचे की उस वेदी पर ऐसे जा बैठा जैसे दुनिया में और किसी के भी कुछ नहीं हुआ, सिर्फ उसकी बड़ी भारी हार हुई है।

उस दिन, सूरज डूब गया, छः बज गए, परन्तु हिमांशु नहीं आया। वनमाली ने एक गहरी सांस ली और हिमांशु के मकान की ओर देखा। खुले जंगले में से देखा कि अलगनी पर हिमांशु के स्कूल के कपड़े लटक रहे हैं, बहुत-से चिरपरिचित लक्षणों से जान लिया कि हिमांशु घर ही में है। हुक्के की नली फेंककर वह उदास मुंह लिए टहलने लगा, और हजार बार उसी जंगले की तरफ देखा किया, पर हिमांशु बगीचे में नहीं आया।

शाम को दिया-बत्ती जलने पर वनमाली धीरे-धीरे हिमांशु के घर गया।

गोकुलचन्द दरवाजे पर बैठे हुए अपनी गरम देह पर ठंडी हवा लगा रहे थे। उन्होंने कहा, "कौन है?"

वनमाली चौंक पड़ा। मानो वह चोरी करने आया हो और पकड़ा गया हो। कांपती हुई आवाज से वह बोला, "मैं हूं, मामाजी!"

मामा ने कहा, "किसे ढूंढ़ने आए हो—घर पर कोई नहीं है।"

वनमाली फिर अपने बगीचे में लौट आया और चुपचाप बैठ गया।

जितनी रात बीतने लगी, उसने देखा कि हिमांशु के मकान के एक-एक करके सब जंगले बन्द हो गए, दरवाजे की संध में से जो उजाला चमक रहा था, वह भी क्रमशः बुझ गया। अंधेरी रात में वनमाली को ऐसा मालूम हुआ कि हिमांशु के घर के सारे दरवाजे सिर्फ उसी के लिए बन्द हो गए हैं, सिर्फ वही अकेला बाहर के अंधेरे में पड़ा रह गया है।

दूसरे दिन फिर वह बगीचे में आकर बैठ गया। सोचने लगा, 'आज शायद आए तो आ सकता है।' जो बहुत दिनों से रोज आया करता था वह एक दिन के लिए भी न आए, यह बात वह किसी भी तरह सोच न

सका। कभी भी उसने यह नहीं सोचा था कि उसका यह बन्धन कभी किसी तरह टूट जाएगा। इतना निश्चिन्त था कि उसे पता तक नहीं कि कब उसके जीवन के सारे सुख-दुख उस बन्धन में जकड़ गए। आज अचानक मालूम हुआ कि वह बन्धन टूट गया है, किन्तु एक ही क्षण में उसका यह सर्वनाश हुआ है, यह वह किसी भी तरह दिल से विश्वास न कर सका।

हर रोज नियम से वह बगीचे में जाकर बैठता है, शायद दैवयोग से किसी दिन वह आ जाए, किन्तु ऐसा दुर्भाग्य कि जो नियमित रूप से रोज-रोज हुआ करता था, वह दैवयोग से एक दिन भी न हुआ।

रविवार के दिन, वनमाली ने सोचा कि पहले की तरह आज भी हिमांशु सवेरे हमारे यहां खाने को आएगा। पक्का विश्वास तो नहीं था; किन्तु फिर भी आशा वह न छोड़ सका।

सब आए, पर वही नहीं आया।

तब वनमाली ने सोचा, 'तो अब शायद खाकर ही आएगा।'

खाकर भी नहीं आया।

वनमाली ने सोचा कि 'शायद आज खा-पीकर सो गया है, जगने पर आएगा।'

कब जागा, सो तो नहीं मालूम, पर आया नहीं।

फिर वही शाम हुई, रात हो गई, हिमांशु के घर के दरवाजे-जंगले एक-एक करके सब बन्द हो गए, और एक-एक करके सब बत्तियां भी बुझ गईं।

इस तरह सोमवार से लेकर रविवार तक सप्ताह के सातों दिन उसकी तकदीर ने जब छीन लिए, और उम्मीद को सहारा देने के लिए हाथ में जब एक भी दिन बाकी नहीं बचा, तब हिमांशु के बन्द मकान की तरफ उसकी डबडबाती हुई दर्द-भरी आंखों ने एक मर्मभेदी अभिमान की फरियाद भेजी, जीवन की सारी पीड़ा को सिर्फ एक ही दर्द-भरी आवाज में भरकर उसने कहा, "हे दयामय!"

स्वर्ण मृग

आदिनाथ और बैजनाथ चक्रवर्ती दोनों की साझे में जमींदारी है। दोनों में बैजनाथ की हालत कुछ खराब है। बैजनाथ के पिता महेशचन्द्र में जमीन-जायदाद की रक्षा करने या उसे बढ़ाने की अकल तनिक भी न थी। वह अपने बड़े भाई शिवनाथ पर पूरा भरोसा रखते थे। शिवनाथ ने छोटे भाई महेशचन्द्र को स्नेह के बड़े दमदार झांसे दिए और उसके बदले उनकी सारी जायदाद हड़प ली। केवल थोड़े-से प्रामेसरी नोट उनके पास बचे थे। जिन्दगी के समन्दर में बैजनाथ को अब केवल अपने उन्हीं थोड़े-से सरकारी कागजों की नाव का सहारा था।

शिवनाथ ने बड़ी खोज के बाद एक बड़े आदमी की इकलौती बेटी के साथ अपने बेटे आदिनाथ का विवाह कर दिया। इस प्रकार वह सम्पत्ति बढ़ाने का एक रास्ता छोड़ गए। महेशचन्द्र ने सात-सात लड़कियों के बोझ से दबे एक गरीब ब्राह्मण पर दया करके, दहेज में एक पैसा भी न लेकर, उसकी बड़ी लड़की के साथ अपने बेटे का विवाह कर दिया। समधी की सातों बेटियों को वह इसलिए अपने घर न ला सके कि उनके केवल एक ही लड़का था। उस ब्राह्मण ने भी कोई खास आग्रह नहीं किया, फिर भी सुनते हैं कि शेष बेटियों के विवाह के लिए उन्होंने समधी को अपनी हैसियत से ज्यादा रुपये-पैसे से मदद की थी।

पिता की मृत्यु के बाद बैजनाथ अपने प्रामेसरी नोटों को लेकर बिलकुल निश्चिन्तता और सन्तोष के साथ जिन्दगी बिताने लगे। काम-

धन्धे की बात उनके मन में कभी आती ही न थी। उनका काम बस इतना ही था कि पेड़ की डाली काटकर बैठे-बैठे उसकी छड़ी बनाया करते। दुनिया-भर के बच्चे और युवा उनके पास आते और छड़ी प्राप्त करना चाहते। वह उन्हें छड़ी बना-बनाकर दे देते। इसके अलावा उदारता की तेजी में मछली पकड़ने का डंडा और पतंग उड़ाने की चरखी वगैरह बनाने में ही उनका काफी समय लग जाता। ऐसा कोई काम हाथ में आ जाए कि जिसमें बड़ी होशियारी से बहुत दिनों तक छीलने-घिसने की आवश्यकता हो और दुनिया की उपयोगिता को देखते हुए उसमें उतना समय बरबाद करना व्यर्थ लगे, तो उनके उत्साह की सीमा ही न रहती।

प्रायः देखा जाता है कि मौहल्ले में जब दलबन्दी और षड्यन्त्र के पीछे बड़े पवित्र चंडीमंडप और चौबारे धुआंधार हो उठते, तब बैजनाथ एक कलम छीलनेवाला चाकू और एक डाली हाथ में लिए सवेरे से दोपहर तक और खाने-पीने के बाद शाम तक अपने चबूतरे पर अकेले अपनी धुन में मस्त बैठे रहते।

षष्ठी देवी की कृपा से बैजनाथ के दो लड़के और एक लड़की पैदा हुई, पर पत्नी मोक्षदा सुन्दरी का असन्तोष दिन-पर-दिन बढ़ता ही जाता है। उन्हें अफसोस है कि आदिनाथ के घर जैसा आयोजन है, बैजनाथ के क्यों नहीं? उस घर की विन्ध्यवासिनी के जैसे और जितने गहने हैं, बनारसी और ढाके की जितनी साड़ियां हैं, उनके यहां बातचीत का जैसा ढंग और रहन-सहन का जैसा ठाठ है, वैसा मोक्षदा के घर नहीं, इससे बढ़कर नाइंसाफी की बात और क्या हो सकती है! मजा यह कि एक ही कुनबा है। छल से भाई की जायदाद हड़पकर ही इतनी उन्नति की है उन लोगों ने। ज्यों सुनती, त्यों मोक्षदा के दिल में अपने ससुर और ससुर के इकलौते बेटे पर अश्रद्धा और अवज्ञा की भावना बढ़ती जाती। अपने घर में उसे कुछ अच्छा भी नहीं लगता। सभी बातों में उसे रुकावट और बेइज्जती दिखाई देती। सोने की खटिया है, वह भी ऐसी कि मुर्दा ले जाने की खाट से भी बदतर। जिसकी सात पीढ़ियों में अपना कहने को कोई

नहीं, ऐसा एक अनाथ चमगादड़ का बच्चा भी इस घर की टूटी-फूटी पुरानी दीवार में नहीं चिपटा रह सकता और घर की सजावट देखकर तो महात्मा परमहंस की आंखों में भी पानी आ जाएगा। इन सब अत्युक्तियों का विरोध करना मर्दों जैसी कायर जाति के लिए सम्भव ही नहीं, इसलिए बैजनाथ बाहर के चबूतरे पर बैठकर दूनी लगन के साथ छड़ी छीलने में लग गए।

लेकिन चुप्पी आफत की अकेली अचूक दवाई नहीं है। किसी-न-किसी दिन पति की कारीगरी में बाधा डालकर मोक्षदा उन्हें अन्तःपुर में बुलवा ही लेतीं और बेहद गम्भीरता से दूसरी ओर ताकती हुई कहतीं, "ग्वाले से कह दो, दूध बन्द कर दे।"

बैजनाथ सन्नाटे में आ जाते और नर्माई से पूछते, "दूध बन्द करने से कैसे काम चलेगा? लड़के पीएंगे क्या?"

वह उत्तर देतीं, "मांड!"

किसी-किसी दिन इसका उलटा भाव भी दिखाई देता। मोक्षदा पति को बुलाकर कहतीं, "मैं कुछ नहीं जानती। जो करना हो, तुम्हीं करो।"

बैजनाथ उदास होकर पूछते, "क्या करना है, बताओगी भी?"

"कम-से-कम इस महीने का सामान तो ले आओ।" कहकर वह एक ऐसी सूची बनाकर देतीं कि जिससे राजसूर्य यज्ञ भी समारोह के साथ सम्पन्न हो जाता।

बैजनाथ साहस करके यदि पूछते भी कि "इतने का क्या होगा?"

तो उत्तर सुनते, "लड़कों को भूखे मरने दो और मैं भी मर जाऊं, तब तुम अकेले रह जाना और खूब सस्ते में काम चलाते रहना।"

इस तरह धीरे-धीरे यह बात बैजनाथ की समझ में आ गई कि अब छड़ी छीलने से काम नहीं चलेगा। पैसा पैदा करने का कोई रास्ता ढूंढ़ना ही पड़ेगा। नौकरी या रोजगार करना बैजनाथ के लिए सम्भव नहीं है, लिहाजा उन्होंने सोचा कि कुबेरों के भंडार में घुसने का कोई आसान रास्ता ढूंढ़ना ही इस मुसीबत से बचने का अकेला तरीका है।

एक दिन रात बिस्तर पर पड़े-पड़े वे बड़ी दीनता से प्रार्थना करने लगे, "हे माता जगदम्बे! सपने में यदि किसी दु साध्य रोग की पेटेंट दवा दो, तो अखबारों में विज्ञापन लिखने का भार मैं ले लूंगा।"

उस रात उन्होंने सपने में देखा कि उनकी पत्नी उनसे बिगड़कर झट से 'विधवा-विवाह' करने की प्रतिज्ञा कर बैठी है। 'धन की कमी के कारण काफी गहने कहां मिलेंगे?' कहकर बैजनाथ उनकी प्रतिज्ञा का विरोध कर रहे हैं और 'विधवा को गहने की जरूरत नहीं' यह कहकर पत्नी उसका खंडन कर रही हैं इसका मुंह-तोड़ जवाब अवश्य है, पर उस समय उनके मस्तिष्क में नहीं आया। इतने में नींद उचट गई। देखा, सवेरा हो गया है। तब झट से उनके मस्तिष्क में आया कि उनकी पत्नी का विधवा-विवाह क्यों नहीं हो सकता। इसके लिए वे कुछ दुखी भी हुए।

दूसरे दिन सवेरे नहा-धोकर बैजनाथ अकेले बैठे पतंग में डोरा डाल रहे थे। इतने में एक संन्यासी ने आकर द्वार पर जयकार की। संन्यासी को देखते ही बिजली की तरह बैजनाथ को भावी ऐश्वर्य की चमकदार प्रतिमा दिखाई दी। संन्यासी का बड़ा आदर-सत्कार किया और बढ़िया भोजन से उसे तृप्त किया गया। बहुत साध्य और साधना के बाद इतना ही पता कर सके कि संन्यासी सोना बना सकता है और उस विद्या को दान करने में उसे कोई आनाकानी भी नहीं है।

पत्नी भी मारे खुशी के नाच उठीं। गुर्दे के रोग से जैसे पीला-ही-पीला दिखाई देता है, वैसे ही उन्हें तमाम दुनिया में सोना-ही-सोना दिखने लगा। कल्पना के कारीगर से पलंग, घर का सामान और दीवारों तक को सोने से मढ़वाकर मन-ही-मन उन्होंने विन्ध्यवासिनी को बुलावा दे दिया।

संन्यासी प्रतिदिन दो सेर दूध और डेढ़ सेर मोहनभोग उड़ाने लगा और बैजनाथ के सरकारी कागजों को दुहकर उनसे मनमाना मुद्रा-रस निकालना शुरू कर दिया।

छड़ी और चरखी के भूखे लड़कों का झुंड आता और बैजनाथ के दरवाजे पर धमाधम घुंसे बजाकर लौट जाता। घर में लड़के-बच्चे वक्त

पर खाना नहीं पाते, कोई गिरकर अपने माथे पर गूमड़ा कर लेता तो कोई रो-रोकर जमीन-आसमान एक कर डालता। मां-बाप को कुछ ध्यान ही नहीं था। चुपचाप अग्निकुंड के सामने बैठे कड़ाह की ओर टकटकी लगाए रहते, न आंखों की पलकें झपकतीं और न मुंह से कोई बात ही निकलती। ऐसा लगा, जैसे प्यासी एकाग्र आंखों पर लगातार लौ की प्रतिच्छाया पड़ते रहने से आंखों की अनियों में स्पर्श मणि के गुण आ गए हों।

दो-दो प्रामेसरी नोटों की उस अग्निकुंड में आहूति हो चुकने के बाद एक दिन संन्यासी से दिलासा मिला, "कल सोने में रंग आ जाएगा।"

उस दिन रात को दोनों में से किसी को भी नींद नहीं आई। वे मिलकर स्वर्णपुरी बनाने के काम में लग गए। इस विषय में कभी-कभी दोनों में मतभेद और बहस भी होने लगती, परन्तु खुशी के जोर में उसकी मीमांसा होने में देर न लगती। आपस में एक-दूसरे का खयाल रखकर अपने-अपने मत में कुछ-कुछ त्याग करने में किसी ने कंजूसी नहीं की। सचमुच उस रात दाम्पत्य एकजुटता इतनी घनी हो गई थी।

दूसरे दिन संन्यासी का पता ही नहीं चला। चारों तरफ से सोने का रंग जाता रहा, सूर्य की किरणें तक अंधेरे में डूबी दीखने लगीं। इसके बाद फिर घर की खाट, सामान और दीवारें चौगुनी दरिद्रता और जर्जरता प्रकट करने लगीं।

आगे से घर के काम-काज के बारे में बैजनाथ कोई बात कहते, तो पत्नी बड़े तेज और मीठे स्वर में कहतीं, "बस, रहने दो, अकलमन्दी बहुत दिखा चुके हो, अब जरा कुछ दिन चुप बैठे रहो।"

बैजनाथ बेचारे एकदम ढीले पड़ जाते।

मोक्षदा ने अब ऐसा बढ़िया भाव धारण कर लिया कि इस मृग-मरीचिका में उन्हें एक पल के लिए भी शान्ति नहीं मिली।

अपराधी बैजनाथ पत्नी को खुश करने के लिए बहुत-सी तरकीबें सोचने लगे। एक दिन एक चौखुटे कागज के डिब्बे में गुप्त उपहार लेकर

पत्नी के पास पहुंचे और बड़े हंसकर चतुराई के साथ सिर हिलाते हुए बोले, "बताओ, क्या लाया हूं?"

पत्नी ने कुतूहल को छिपाकर उदासीन भाव से कहा, "कैसे बताऊं! मैं कोई जादू तो जानती नहीं।"

बैजनाथ ने बेकार में समय खराब करके पहले तो धीरे-धीरे उसकी गांठ खोली, उसके बाद फूंक मारकर कागज की धूल उड़ाई, फिर बड़ी सावधानी से एक-एक तह खोलकर ऊपर का कागज हटाकर आर्ट स्टूडियो की बनी दशमहाविद्या की पांच रंगोंवाली तस्वीर निकाली और प्रकाश की ओर घुमाकर पत्नी के सामने रख दी।

पत्नी को उसी समय विन्ध्यवासिनी के खास कमरे में लगे हुए विलायती तैल-चित्र की याद आई। वह बहुत ही नाराजगी के साथ बोलीं, "अहा, बलिहारी! इसे तुम अपनी बैठक में ही लगा लेना और बैठे-बैठे इसकी ओर ही देखा करना। मुझे इसकी आवश्यकता नहीं।"

बैजनाथ उदास हो गए और समझ गए कि विधाता ने उन्हें और-और शक्तियों के साथ स्त्री को खुश रखने की दुर्लभ शक्ति से भी अलग कर रखा है।

इधर देश-भर में जितने ज्योतिषी थे, मोक्षदा ने सबको हाथ दिखाया और जन्म-पत्री भी दिखाई। सभी ने यही कहा कि वह सधवा हालत में ही मृत्यु प्राप्त करेंगी, परन्तु उस भारी आनन्द-भरे परिणाम के लिए वह बहुत उतावली न थीं। इसलिए इससे भी उनका अचम्भा न मिटा।

अबकी बार सुना कि उनका सन्तान-भाग्य अच्छा है। लड़के-लड़कियों से जल्द ही घर-भर जाएगा। सुनकर कोई खास खुशी प्रकट नहीं की।

अन्त में, एक ज्योतिष ने कहा, "एक साल के अन्दर अगर बैजनाथ को देव-धन न मिल जाए, तो हम अपनी पौथी-पत्रा सब जला डालेंगे।"

ज्योतिषी की इस दृढ़ प्रतिज्ञा को सुन मोक्षदा के मन में अब तनिक अविश्वास न रह गया था।

ज्योतिषी काफी भेंट-पूजा लेकर विदा हो गए, लेकिन बैजनाथ के

लिए जिन्दगी मार-समान हो गई। धन पैदा करने के कुछ मामूली-से प्रचलित रास्ते हैं भी, जैसे खेती, नौकरी, व्यापार, चोरी और धोखेबाजी आदि पर देव-धन पैदा करने का वैसा कोई बताया रास्ता नहीं है। इसीलिए मोक्षदा बैजनाथ को जैसे-जैसे उत्साह देतीं और फटकार बतातीं, वैसे-वैसे उन्हें किसी तरफ कोई रास्ता नहीं सुझाई देता। कहां खोदना शुरू करें, किस तालाब में खोज कराने के लिए पनडुब्बी को तैनात करें, मकान की किस दीवार को तुड़वाएं, कुछ फैसला नहीं कर पाए।

मोक्षदा ने बहुत नाराज होकर पति से कहा, "मर्दों के भेजे में मगज के बदले में गोबर भरा रहता है, यह मैं पहले नहीं जानती थी।" फिर बोली, "जरा हिलो तो सही। ऊपर को मुंह उठाए बैठे रहने से क्या आसमान से रुपये बरसेंगे?"

बात ठीक है और बैजनाथ चाहते भी यही हैं, पर हिलें भी तो किस तरह और कहां? कोई बताता भी नहीं, इसलिए चबूतरे पर बैठकर फिर छड़ी छीलने लगे।

इधर आश्विन मास में दुर्गा-पूजा नजदीक आ गई। चतुर्थी से ही नावें आ-आकर घाट पर लगने लगीं। बाहर से आए लोग अपने घरों को लौटने लगे। टोकरियों में कुम्हड़ा, घुइयां, सूखे नारियल, टीन के बक्सों में लड़कों के लिए जूते, छाते, कपड़े और कहानियों की नई-नई किताबें आ रही हैं।

जाड़ों के सूरज की किरणें उत्सव के हास्य की तरह बिना बादलों के आकाश में व्याप्त हो रही हैं, अधपके धान के खेत थर-थर कांप रहे हैं, पेड़ों की वर्षा से धुली हुई तेजयुक्त हरी-हरी पत्तियां नए जाड़े की हवा से सिसकारी भर रही हैं और चायना टसर का कोट पहने, कन्धे पर तही हुई चादर लटकाए, सिर पर छतरी ताने परदेश से लौटते हुए यात्रीगण खेत के रास्ते से घर की तरफ जा रहे हैं।

बैजनाथ बैठे-बैठे यही देखा करते और उनके दिल से लम्बी सांसें निकलती रहतीं। खुशियों से शून्य अपने घर के साथ बंगाल के हजारों घरों के मिलन के उत्सव की तुलना करते और मन-ही-मन कहते, विधाता

ने मुझे ही क्यों ऐसा निकम्मा पैदा किया?

लड़के सवेरे ही उठकर प्रतिमा-निर्माण देखने के लिए आदिनाथ के घर के आंगन में जाकर बैठ गए। खाने का समय होने पर दासी उन्हें जबरदस्ती वहां से पकड़ ले गई। बैजनाथ उस वक्त चबूतरे पर बैठे आज के इस संसार-भर में फैले उत्सव में अपने जीवन की असफलता की याद के करके दुखी हो रहे थे। नौकरानी के हाथ से दोनों लड़कों को छुड़ाकर प्रेम से उन्हें अपनी गोद के पास खींचकर बड़े लड़के से पूछा, "क्यों रे, अबकी बार पूजा में तू क्या लेगा, बोल ना?"

अविनाश ने उसी वक्त उत्तर दिया, "एक नाव देना, बापू जी।"

छोटे लड़के ने भी सोचा कि बड़े भैया से किसी विषय में कम रहना ठीक नहीं, बोला, "मुझे भी एक नाव दो, बापू जी।"

बाप के योग्य बेटे हैं। एक निकम्मी दस्तकारी मिल गई कि आप धन्य हो गए। बाप ने कहा, "अच्छा, ठीक है।"

इधर ठीक समय पर पूजा की छुट्टियों में काशी से मोक्षदा के एक चाचा घर आए। वह वकालत करते थे। मोक्षदा ने कुछ दिनों उनके घर काफी आना-जाना रखा।

अन्ततः एक दिन पति से कहने लगीं, "सुनते हो, तुम्हें काशी जी जाना होगा।"

बैजनाथ को अचानक ऐसा लगा जैसे शायद उनका अब मौत का वक्त आ पहुंचा है। अवश्य किसी ज्योतिषी ने जन्म-पत्री देखकर कहा होगा, इसीलिए पत्नी उनकी सद्‌गति के लिए उपाय कर रही है।

बाद में पता चला कि काशी में एक मकान है, और वहां गुप्त धन मिलेगा। उस मकान को खरीदकर उसमें से धन निकालकर लाना होगा।

बैजनाथ ने कहा, "यह तो बड़ी मुसीबत का काम है। मैं काशी नहीं जा सकता।"

बैजनाथ आज तक घर छोड़कर कभी बाहर नहीं गए। प्राचीन शास्त्रों के रचयिता लिखते हैं, गृहस्थ को किस तरह घर से निकाला जाता है, इस

विषय में स्त्रियां अशिक्षित, परन्तु पटु होती हैं। मोक्षदा अपने मुंह की बातों से मानो घर में लाल मिर्च का धुआं भर देती थीं लेकिन उससे अभागे बैजनाथ सिर्फ आंसू ही बहाकर रह जाते, काशी जाने का नाम तक नहीं लेते।

दो-तीन दिन इसी तरह बीत गए। बैजनाथ ने बैठे-बैठे कुछ लकड़ियों को कांट-छांटकर और जोड़-जोड़कर दो खिलौना नावें बनाईं, उनमें मस्तूल लगाए और कपड़ा काटकर पाल भी लगा दिए। लाल कपड़े का झंडा लगाया और पतवार आदि ठीक जगह पर लगा दी। एक गुड्डे को मल्लाह बनाया, फिर यात्री भी बैठा दिए। मतलब यह है कि इसमें उन्होंने बड़ी कुशलता का परिचय दिया। उन नावों को देखकर अपने मन को बस में रख सकें, ऐसे ठोस इरादेवाले बालक कम ही मिलेंगे। इसीलिए बैजनाथ ने सप्तमी से पहले छठ की रात को जब दोनों नावें उन लड़कों के हाथ में सौंपी थीं, तो वे मारे खुशी के नाचने लगे। एक तो केवल नाव ही काफी थी, उस पर लगे हुए थे पाल, मस्तूल, पतवार और मल्लाह आदि। यही उनके लिए भारी आश्चर्य की बात थी।

लड़कों की खुशी की धूम ने मां का ध्यान खींचा। उन्होंने आकर अपनी आंखों से गरीब बाप का दिया पूजा का उपहार बेटों के हाथ में देखा तो मारे गुस्से के रोना आ गया। माथे पर हाथ मारा और लड़कों के हाथ से खिलौने छीनकर खिड़की से बाहर फेंक दिए। सोने का हार तो दरकिनार रहा, साटन का कोट और जरीदार टोपी भी मिट गई। कैसा मनहूस आदमी है, दो खिलौने देकर खास अपने ही बेटों को धोखा देने आया है! उसमें भी कंजूस आदमी से दो पैसे खर्च नहीं किए गए, अपने हाथ से बनाई हैं नावें!

छोटा लड़का जोर से रो उठा।

"मूर्ख कहीं का," कहते हुए मोक्षदा ने उसके गाल पर कसकर एक चांटा लगा दिया।

बड़ा लड़का बाप के मुंह की ओर देखकर अपना दुख भूल गया। वह

ऊपरी तौर पर खुशी दिखाते हुए बोला, "बापू जी, मैं कल खूब सबेरे जाकर उठा लाऊंगा।"

बैजनाथ उसके दूसरे ही दिन काशी जाने को राजी हो गए, पर पैसे कहां थे? उनकी पत्नी ने गहने बेचकर पैसे एकत्र किए। बैजनाथ की दादी के जमाने के गहने थे। ऐसा पक्का सोना और इतनी चीजें आजकल देखने को भी नहीं मिलतीं।

बैजनाथ को ऐसा लगा, जैसे वह मरने जा रहे हों। बेटों को गोद में लेकर पुचकारा, खूब प्यार किया, फिर आंखों में आंसू भरकर घर से निकल पड़े। उस समय मोक्षदा भी रोने लगी थीं।

काशी का मकान मालिक बैजनाथ के चचिया सुसर का मुवक्किल था। इसलिए मकान खूब ऊंचे दामों में मिला। बैजनाथ उस मकान में अकेले रहने लगे। मकान बिलकुल गंगा के किनारे था। गंगा की धारा उसकी नींव को धोती हुई बहती रहती।

रात को बैजनाथ के रोंगटे खड़े हो उठे। सूने मकान में सिरहाने के पास दीया जलाकर चादर ओढ़कर सो रहे, पर नींद ही नहीं आई। आधी रात को जब सारा शोर थम गया, तब कहीं से झनझन की आवाज सुनकर बैजनाथ चौंक पड़े। आवाज बहुत धीमी थी, पर साफ सुनाई देती थी, जैसे पाताल में बलिराजा के कोषाध्यक्ष अपने भंडार में बैठे हुए रुपये गिन रहे हों।

बैजनाथ के मन में भय, अचम्भा और साथ ही जीती जा सकनेवाली आशा का भी संचार हुआ। कांपते हाथ से दीया उठा सारी कोठरियों में घूम आए। इस कोठरी में घुसते तो मालूम होता कि आवाज उस कोठरी से आ रही है और उस कोठरी में जाते तो पता चलता कि किसी और कोठरी से आ रही है। बैजनाथ सारी रात इसी तरह इस कोठरी से उस कोठरी में घूमते रहे। दिन में रात का वह पाताल-भेदी शब्द अन्य शब्दों के साथ मिल गया, फिर वह पहचान में नहीं आया।

रात के जब दो-तीन पहर बीत चुके और दुनिया सो चुकी, तो फिर

वही शब्द जाग उठा। बैजनाथ का मन बहुत बेचैन हो उठा। वे शब्द का लक्ष्य ठीक करके किस तरफ जाना चाहिए, कुछ तय नहीं कर पाए। जैसे रेगिस्तान में पानी का शोर सुनाई दे रहा है, पर वह किधर से आ रहा है, कुछ फैसला करते नहीं बनता। डर यह था कि कहीं गलत रास्ता पकड़ लिया और गुप्त झरना अचानक अधिकार के बाहर चला गया तो प्यासा बटोही जैसे चुपचाप खड़ा-खड़ा पानी के झरने की आवाज की तरफ बड़े गौर से कान लगाए रहता है और प्यास भी लगातार बढ़ती ही जाती है, ठीक वही स्थिति बैजनाथ की न हो।

बहुत-से दिन अनिश्चितता में ही कट गए। सिर्फ अनिद्रा और बेकार के भरोसे से उनके सन्तोष-भरे चेहरे पर बेचैनी का तीव्र भाव रेखांकित हो उठा। उनकी अन्दर धंसी आश्चर्य-भरी आंखों में दोपहर की रेगिस्तान बालू की तरह एक लपट दिखाई देने लगी।

अन्त में एक दिन दोपहर को सारे दरवाजे बन्द करके उन्होंने घर में साबर ठकठकाना शुरू कर दिया। बगल की एक छोटी कोठरी की जमीन पोली-सी लगी।

आधी रात के करीब बैजनाथ अकेले जमीन खोदने लगे। जब रात खत्म होने को आई और पौ फटने लगी, तब कहीं गड्ढा पूरा खुद पाया।

उन्होंने देखा कि नीचे एक घर-सा बना है, पर रात के अंधेरे में बिना विचारे उसमें पैर डालने की उनकी हिम्मत न पड़ी। गड्ढे के ऊपर बिछौना बिछाकर पड़ रह, लेकिन आवाज इतनी साफ-साफ सुनाई देने लगी कि डर के मारे उनसे वहां ठहरना कठिन हो गया। वहां से वह उठ आए, लेकिन घर को यूं ही सूना छोड़कर दूर जाने की भी उनकी हिम्मत न हुई। लोभ और भय दोनों मिलकर उन्हें दोनों ओर से हाथ पकड़कर खींचने लगे। रात बीत गई।

आज दिन में भी आवाज सुनाई दे रही है। नौकर तक को उन्होंने घर के भीतर नहीं आने दिया। खाना-पीना भी बाहर ही किया था। खा-पीकर घर में घुसे और भीतर से ताला बन्द कर लिया।

दुर्गा नाम का जाप करते हुए उन्होंने गड्ढे के मुंह से बिस्तर हटाकर अलग कर दिया। पानी की छप-छप और धातु की ठन-ठन आवाज बिलकुल साफ सुनाई देने लगी थी।

डरते-डरते गड्ढे के पास आहिस्ता से मुंह ले जाकर देखा, बहुत नीचे एक कोठरी-सी थी। उसमें पानी का सोता जोरों से चल रहा था। अंधेरे में और कुछ खास दिखाई नहीं दिया।

फिर एक बड़ी लकड़ी डालकर आजमाया और देखा कि पानी घुटनों से ज्यादा नहीं है। एक दियासलाई की डिबिया और बत्ती लेकर उस कोठरी के अन्दर बड़ी आसानी से कूद पड़े। क्षण-भर में ही कहीं सारी आशा बुझ न जाए, इसलिए बत्ती जलाने में हाथ कांपने लगे। बहुत-सी दिलासलाइयां बेकार करने के बाद बत्ती जली।

देखा कि लोहे की मोटी जंजीर से एक ताम्बे का भारी घड़ा बंधा है। जब भी सोते का पानी जोर से आता, जंजीर घड़े पर पड़ती और आवाज करती थी।

बैजनाथ पानी पर छप-छप शब्द करते हुए झटपट घड़े के पास पहुंचे, देखा तो घड़ा खाली था।

फिर भी अपनी आंखों पर विश्वास न कर सके। दोनों हाथों से घड़ा उठाकर उसे झकझोर दिया, फिर भी भीतर से कुछ नहीं निकला। औंधा करके हिलाया, कुछ भी नहीं गिरा। उसका गला उखड़ा हुआ था जैसे किसी समय घड़े का मुंह बिलकुल बन्द रहा हो और पीछे किसी ने तोड़ दिया हो।

अब बैजनाथ पागल की तरह पानी के अन्दर दोनों हाथों से टटोल-टटोलकर देखने लगे। कीचड़ में कोई चीज मालूम दी। उठाकर देखा, तो मुर्दे की खोपड़ी थी। उसे भी कानों के पास ले जाकर हिलाया, पर भीतर कुछ न निकला। खोपड़ी उठाकर फेंक दी। बहुत देर तक ढूंढ़ते रहे, पर किसी नर-कंकाल के सिवा और कुछ भी हाथ न लगा।

देखा कि गंगा की तरफ दीवार में एक जगह सूराख-सा हो रहा है।

उसमें से पानी आ रहा है। सम्भव है, उनसे पहले जिस आदमी की जन्म-पत्री में देव-धन प्राप्ति की बात लिखी थी, वही शायद इस छेद से घुसा होगा।

अन्ततः बिलकुल हताश हो गए, तो 'अरी मेरी मां!' कहकर एक गहरी सांस ली। उसके जवाब में मानो अतीत काल के और भी बहुत-से हताश व्यक्तियों की सांसें भीषण गम्भीरता के साथ प्रतिध्वनि के रूप में पाताल में गूंज उठीं।

सारी देह में पानी और कीचड़ लपेटे हुए बैजनाथ ऊपर आए। लोगों के शोर-शराबे में डूबी धरती उन्हें आदि से अन्त तक झूठी और उसी जंजीर से बंधे हुए घड़े की तरह सूनी मालूम देने लगी।

फिर सारा सामान बांधना पड़ा, टिकट खरीदना पड़ेगा, गाड़ी पर चढ़ना होगा; घर जाना होगा, पत्नी के सामने उत्तर देना होगा, अपने निकम्मे जीवन के भार को फिर पहले की तरह ढोना होगा। मन हुआ कि नदी के कमजोर बालू के तट की तरह झट से टूटकर पानी में गिर जाएं। पर ऐसा न कर सके। फिर वही सामान बांधना पड़ा, टिकट खरीदना पड़ा और गाड़ी पर भी चढ़ना पड़ा।

एक दिन शाम के समय घर के द्वार पर जा पहुंचे। आश्विन मास में जाड़ों के सबेरे दरवाजे के पास बैठकर बैजनाथ ने अनेक बाहर के लोगों को घर लौटते देखा था और गहरी सांस लेकर मन-ही-मन परदेस से घर लौटने के इस सुख के लिए लालायित भी हुए थे, लेकिन तब आज की इस शाम की वह सपने में भी कल्पना नहीं कर सकते थे।

घर में आकर आंगन के तख्त पर भोलेपन से बैठे रहे, अन्दर नहीं गए। सबसे पहले महरी ने उन्हें देखा और देखते ही शोर मचा दिया। बेटे दौड़े आए। पत्नी ने बुलवा भेजा।

बैजनाथ का नशा-सा उतर गया। जैसे फिर वह उसी पुरानी गृहस्थी में सोते से जाग उठे। सूखे मुंह पर मैली-सी हंसी लिए एक बेटे को गोद में ले और एक का हाथ पकड़ भीतर पहुंचे। दीया जल चुका था। हालांकि

रात नहीं हुई थी, तो भी जाड़े की शाम में रात की तरह का सन्नाटा छाया हुआ था।

बैजनाथ कुछ देर चुप रहे, फिर मीठे स्वर में पत्नी से पूछने लगे, "कहो कैसी रहीं?"

पत्नी ने कोई उत्तर न देकर पूछा, "उसका क्या हुआ?"

बैजनाथ ने कुछ उत्तर न दे माथे पर हाथ दे मारा। मोक्षदा का चेहरा बहुत सख्त हो गया।

बेटे बेचारे किसी भारी विर्पत्ति की छाया देखकर अहिस्ता से हट गए। महरी से जाकर बोले, "उस दिनवाली नाई की कहानी सुनाओ ना।" और बिस्तर पर पड़ गए।

रात होने लगी, पर दोनों के मुंह से एक भी बात नहीं निकली। घर के अन्दर जाने कैसा सन्नाटा-सा छा गया और मोक्षदा के होंठ क्रमवार वज्र की तरह सख्त होने लगे।

बहुत देर बाद मोक्षदा बिना कुछ कहे उठकर अपने कमरे में चली गईं और भीतर से सांकल लगा ली।

बैजनाथ चुपचाप बाहर खड़े रहे। चौकीदार 'सोनेवाले होशियार' आवाज लगाकर चला गया। थकी हुई दुनिया सुख की नींद सो रही थी। अपने नाते-रिश्तेदारों से लेकर अनन्त आकाश के नक्षत्र तक किसी ने इस लांछित नींद उड़े पुरुष बैजनाथ से एक बात भी न पूछी।

बहुत रात बीतने पर, शायद किसी सपने से जागकर, बैजनाथ के बड़े लड़के ने बिस्तर से उठ, बरामदे में आकर पुकारा, "बापू जी!"

लेकिन तब उसके बापू जी वहां थे ही नहीं। बालक ने और भी जरा जोर से बन्द किवाड़ के बाहर से पुकारा, "बापू जी!" पर कोई उत्तर नहीं मिला। फिर वह डरता-डरता बिस्तर पर जाकर सो गया।

पहले की रीति के अनुसार महरी ने हुक्का भरकर बैजनाथ की तलाश की लेकिन वह कहीं भी दिखाई नहीं दिए। दिन चढ़ने पर पड़ोस के लोग उनकी खबर लेने पहुंचे पर बैजनाथ के साथ किसी की भी भेंट नहीं हुई।

अतिथि

कटहलिया के जमींदार मतिलाल बाबू अपनी नाव में परिवार के साथ कलकत्ता से अपने देहात जा रहे थे। रास्ते में दोपहर को एक मैदान के पास नाव रुकवाकर खाने-पीने का इन्तजाम कर रहे थे कि एक ब्राह्मण लड़के ने आकर पूछा, "आप लोग कहां जा रहे हैं, बाबू साहब?" उसकी उम्र पन्द्रह-सोलह साल से अधिक न होगी।

मति बाबू ने जवाब दिया, "कटहलिया।"

ब्राह्मण बालक बोला, "मुझे रास्ते में नन्दीगांव उतार देंगे?"

बाबू ने बात कबूल करते हुए पूछा, "तुम्हारा क्या नाम है?"

ब्राह्मण लड़के ने जवाब दिया, "तारापद।"

लड़का देखने में सुन्दर और गोरा था, बड़ी-बड़ी आंखों और मुस्कान-भरे होंठों से एक तरह की बड़ी खूबसूरत नजाकत जाहिर हो रही थी। देह पर एक मैली धोती के अलावा और कोई कपड़ा नहीं था। उसका उभरा हुआ बदन सभी तरह से सन्तुलित था, जैसे किसी कलाकार ने बड़ी मेहनत से सुन्दर और सुडौल बनाकर उसे सिरजा हो। जैसे वह पिछले जन्म में तप करनेवाला लड़का था और अब उस पवित्र तपस्या के असर से उसकी देह से विकार का बहुत-सा भाग खत्म होकर उसमें एक तरह का ब्राह्मण-श्री का तेज फूट उठा हो।

मतिलाल बाबू बहुत नर्म होकर एवं स्नेह-भरे स्वर में बोले, "बेटा, अब तुम नहा लो। नहाने के बाद यहीं खाना खाना।"

तारापद ने कहा, "अच्छा!" फिर वह उसी वक्त बेझिझक भाव से रसोई के काम में लग गया। मतिलाल बाबू का नौकर पश्चिम का था। वह मछली वगैरह बनाने में उतना होशियार न था। तारापद ने झटपट उसका काम अपने हाथ में लेकर पूरा कर डाला तथा एक-दो सब्जी भी अपनी चतुरता दिखाते हुए बना डालीं। रसोई का काम खत्म करके वह नदी में नहा आया और अपनी गठरी से एक साफ धोती निकालकर पहिन ली। एक छोटा-सा लकड़ी का कंघा निकालकर, उसने अपने लम्बे-लम्बे बालों को संवारकर आगे से पीछे की ओर कर लिया। इसके बाद साफ एवं शुद्ध जनेऊ को ठीक से छाती पर से लटकाकर, मतिलाल बाबू के पास आ खड़ा हुआ।

मतिलाल बाबू उसे अपने साथ नाव में ले गए। वहां पर उनकी पत्नी और उनकी एक नौ साल की लड़की बैठी हुई थी। मतिलाल बाबू की स्त्री अन्नपूर्णा उस खूबसूरत बालक को देखते ही प्यार से उमगकर मन-ही-मन बोलीं, 'न जाने किसका बच्चा है, कहां से आया है? इसकी मां इसे छोड़कर कैसे जिन्दा है?'

ठीक वक्त पर मतिबाबू एवं उस लड़के के लिए पास-पास आसन और पीढ़े बिछाए गए। लड़का बहुत कम खाता था। उसको ऐसे खाते देखकर अन्नपूर्णा सोचने लगीं, 'शायद शर्म से नहीं खा रहा है।' इसलिए उन्होंने उससे और खाने के लिए बहुत जिद की, लेकिन जब वह खाना खत्म कर चुका तो फिर उसने कोई बात नहीं सुनी। देखने में आया कि लड़का सब काम अपनी मर्जी से ही करता है और ऐसे सहज स्वभाव से करता है कि उससे किसी तरह की जिद या बेअदबी जाहिर नहीं होती। उसके बरताव में झिझक का भी कोई रंग-ढंग देखने को नहीं मिला।

अन्नपूर्णा ने सबके खा-पी चुकने के बाद उसे अपने पास बैठा लिया। फिर उससे उसके जीवन का इतिहास पूछने लगीं। लेकिन उससे इस मामले में कुछ भी सुराग हाथ न आया। केवल इतना ही पता चला कि वह सात-आठ साल की उम्र में ही अपनी मर्जी से घर छोड़कर चला आया है।

अन्नपूर्णा ने पूछा, "तुम्हारे मां-बाप नहीं हैं?"

तारापद ने कहा, "हैं।"

अन्नपूर्णा ने पूछा, "वे तुम्हें प्यार नहीं करते?"

तारापद इस सवाल को बेकार समझकर हंस दिया। बोला, "क्यों, प्यार क्यों नहीं करेंगे?"

अन्नपूर्णा ने पूछा, "तो फिर तुम इस तरह उन्हें छोड़कर क्यों चले आए?"

तारापद ने जवाब दिया, "उनके यहां मेरे अलावा और भी चार लड़के तथा तीन लड़कियां हैं।"

अन्नपूर्णा तारापद के इस जवाब से दुखी होकर बोलीं, "यह क़ैसी बात? पांच उंगलियों में से एक उंगली को भी कोई अलग कर सकता है?"

तारापद की उम्र कम है, उसी तरह उसकी कहानी भी छोटी-सी है, लेकिन वह अजीब लड़का है। वह अपने मां-बाप का चौथा लड़का है। उसके पिता का उसके बचपन में ही निधन हो गया था। घर में बहुत सारे बच्चे होने पर भी तारापद की पूछ थी और सब लोग उसे लाड़-प्यार भी करते थे। मोहल्ले के लोग और भाई-बहन भी उससे प्यार करते थे। यहां तक कि स्कूल में अध्यापक भी उसे मारते-पीटते नहीं थे। यदि कभी पीट भी देते तो उसके घर छोड़ने की कोई खास वजह नहीं थी। जो उपेक्षित बीमार लड़के हैं, जो हमेशा चोरी से पेड़ों के फल और गृहस्थों से अपने हक का चौगुना वसूल करते फिरते हैं, वे भी अपने जाने-पहचाने कस्बे की सीमा के अन्दर अपनी परेशान मां के नजदीक पड़े रहते हैं, और जिसे पूरा गांव प्यार करता हो वह लड़का एक दूसरे देश की नाटक-मंडली के साथ मिलकर बिना किसी डर के गांव छोड़कर चला आया था।

सब लोग ढूंढ़कर उसे फिर गांव में ले आए थे। माता ने उसे अपनी छाती से लगाते हुए रो-रोकर उसे आंसुओं से गीला कर दिया था!, उसकी बहनें बहुत देर तक रोती रही थीं और बड़े भाई ने एक अभिभावक की सख्त जिम्मेदारी को निभाते हुए उसे मीठी-मीठी फटकार देकर, आखिर

में बहुत ही खुश मन से पहला इनाम दिया था। मोहल्ले की औरतों ने उसे अपने मकान पर बुलाकर, बहुत प्यार और कई तरह के लालच दिखाकर, अपने ही गांव में रहने के लिए आग्रह किया था। फिर भी बन्धन ही नहीं, प्यार एवं स्नेह का बन्धन भी उसे बरदाश्त नहीं हो सका। जन्म के नक्षत्र ने उसे घर से अलग ही कर दिया था। जब कभी वह देखता कि नहर में यात्री नौका जा रही है, या बूढ़े बरगद के पेड़ के नीचे दूर देश के साधु महाराज टिके हुए हैं या बनजारे नहर के पासवाले खुले मैदान में छोटी-छोटी लकड़ियों को छीलकर टोकरियां बना रहे हैं, तभी किसी अनहोनी प्रेरणा के अधीन होकर धरती की रूखी-सूखी आजादी के लिए उसका मन रोने लगता था। दो-तीन बार गांव से बाहर भागने के बाद भी फिर चौथी बार भागने को निकल पड़ा। तब उसके घरवाले ही नहीं, गांववाले भी, उसके गांव में रहने की उम्मीद छोड़कर चुप बैठ गए।

पहले उसने जिस नाटक-मंडली का साथ पकड़ा था, उसके अध्यक्ष तक उसे बेटे जैसा प्यार करते थे तथा मंडली के बड़े तथा छोटे सभी लोगों का वह प्यारा हो उठा था। जब कभी किसी भी जगह कोई खास खेल होता तो उस मकान के मालिक और खासकर मालकिनें उसे खासतौर से अपने नजदीक बुलाकर उसकी खातिर करने लगती थीं। लेकिन वह चुपचाप एक दिन किसी से कुछ कहे-सुने बगैर ही गायब हो गया। किसी को पता तक न चला।

तारापद हिरनी के बच्चे के समान संगीत-प्रेमी तथा हिरनी के जैसा स्वच्छन्द मन का है। नाटक के गीतों ने उसे घर से अलग रहनेवाला बना दिया था। गीतों की आवाज ने उसकी सारी नसों में थिरकन और ताल ने उसके पूरे शरीर में हरकत पैदा कर दी थी। जब वह छोटा बच्चा था, तब उसे संगीत-सभा में युवकों की भांति जमकर बैठे तथा गम्भीरतापूर्वक झूमते देखकर हंसी नहीं रुकती थी। केवल संगीत ही नहीं, बल्कि पेड़ों के पत्तों पर जब बारिश होती, आसमान में जब बादल गरजने लगते और जंगल में बिना मां के शिशु की तरह जब हवा रोती रहती, तब भी उसका

मन बेकाबू हो उठता था। दोपहरी में दूर आसमान में चीलों का चीखना, बारिशवाली शाम को मेंढकों का टर्राना तथा अंधेरी रात में गीदड़ों का शोर मचाना—सभी बातें उसे बेचैन बना देती थीं। वह इस संगीत के मोह से खिंचकर एक संगीत-मंडली में शामिल हो गया था। मंडली प्रधान ने उसे बड़ी मेहनत से गाना सिखाया था और दिल के पिंजरे में बसनेवाली चिड़िया की तरह उसे चाहने भी लगा था। चिड़िया ने कुछ-कुछ गाना सीखा भी, लेकिन एक दिन सवेरा होते ही वह उड़कर चली गई।

आखिरी बार एक नटों की मंडली में शामिल हुआ। जेठ से लेकर आषाढ़ के आखिर तक इस प्रान्त में मेले लगा करते हैं। तब नाटक, यात्रा-गान, लोक-गीत, नटों का खेल, नाचनेवालियों के नाच वगैरह तरह-तरह के खेल हुआ करते हैं। यह खेल दिखानेवाले नावों में इधर से उधर आते-जाते रहते हैं; पिछले साल ऐसा ही एक नटों का दल नाव में घूमधाम रहा था, जिसके साथ तारापद भी था।

इस दल को छोड़कर उसका भागना आखिरी भागना था। जब उसने सुना कि नन्दीगांव के जमींदार एक बहुत बड़े जलसे के लिए अच्छी नाटक-मंडली बना रहे हैं, तो वह झटपट अपनी गठरी बांधकर नन्दीगांव को तैयार हो गया था और नाव के इन्तजार में नदी के किनारे चहलकदमी करने लगा था। तभी उसकी भेंट मतिबाबू से हो गई थी।

तारापद एक-एक कर कई मंडलियों में रहने के बावजूद सहज कल्पनाशील मन के आलस से किसी भी एक मंडली में उभर न सका। वह मन में बिलकुल अलग-थलग और आजाद तबीयत का आदमी था। उसने दुनिया की बहुत-सी बुरी बातें सुनी थीं और बहुत-से बुरे-बुरे नजारे भी देखे थे। लेकिन वे उसके हृदय में पल-भर के लिए भी जगह नहीं पा सके थे। उसके मन को और बन्धनों की तरह किसी तरह की किसी आदत की पकड़ भी काबू न रख सकी। असल में वह इस दुनिया के पंकिल जल में हमेशा स्वच्छ पंख राजहंस की भांति तैरता रहा है। जब-जब उसने डुबकी लगाई, तब-तब उसके पंख न तो भीगे ही और न

मैले हुए। इसलिए घर छोड़नेवाले इस लड़के के चेहरे पर हमेशा एक प्रकार का साफ-सही यौवन का दमकता रूप बना ही रहा है। यही वजह है कि उसके उस जवान चेहरे को देखकर बुद्धिमान मतिबाबू भी मोहित हो गए और बिना शक-सन्देह के उसे अपना लिया।

खाना खा लेने के बाद नाव फिर खोल दी गई। अन्नपूर्णा उस ब्राह्मण लड़के से बड़े प्यार से उसके घर-परिवार के लोगों की बातें पूछने लगीं। तारापद ने उनकी सब बातों को थोड़े में जवाब देने के बाद बाहर आकर छुटकारा पाया। बाहर बरसाती नदी पूरी तरह भरी हुई थी। एक तरह से उसने अपनी चंचलता से प्रकृति मां को परेशान कर रखा था। नदी के किनारे पानी में आधी डूबती हुई कांस की कतारें, खुले आसमान की धूप और उसके ऊपर ईख के घने खेत, और उससे भी ऊपर क्षितिज को छूती नीले रंग की वन रेखा जैसे किसी एक रूप-कथा की जादू की लकड़ी की छुअन से पैदा हुई सुन्दरता के समान शान्त नीले आसमान की अपलक नजरों के सामने लहरा उठी थी। चारों ओर का नजारा जैसे सजीव, कम्पनयुक्त, पहले प्रकाश से जगमगाकर नवीनता से चिकना-चिकना एवं अधिकता से पूरी तरह भर उठा था।

नाव की छत पर पाल की छाया के नीचे तारापद आकर बैठ गया। हरे-भरे ढालू मैदान पाट के पानी से भरे हुए थे। धान के हरे-भरे, खेत घाट से गांव की ओर जानेवाले तंग रास्ते एवं छायादार घने पेड़ों से घिरे हुए गांव बारी-बारी से उसकी आंखों में आ-आकर बढ़ने लगे। जल-थल और आसमान के चारों ओर की जीवन्तता और वाचालता, ऊपर और नीचे के अस्तित्व और मुक्त सुन्दरता, विशाल और चिरस्थायी, चुपचाप एकटक देखता संसार उस जवान लड़के के परम मित्र थे। तब भी वे इस मानवपुत्र को पल-भर के लिए भी अपनी प्रेम की जकड़ में बांधने की कोशिश नहीं करते थे; नदी के किनारे एक बछड़ा अपनी पूंछ उठाए दौड़ रहा है। गांव का एक घोड़ा, जिसके पैर बंधे हुए हैं, उछल-उछलकर घास खा रहा है। जल-मुर्गी मछुओं की जालवाली खूंटी से पानी में कूदकर,

मछली पकड़ने की कोशिश कर रही है। गांव के लड़के पानी में कई तरह से ऊधम मचा रहे हैं। औरतें कमर तक पानी में नहाती हुई आपस में हंस-हंसकर बातें कर रही हैं। इन सब नजारों को वह जैसे पहली बार और बहुत कौतूहल से बैठा हुआ देख रहा है। उसकी आंखों की प्यास किसी भी तरह नहीं मिट पा रही थी।

नाव की छत पर जाकर तारापद ने धीरे-धीरे डांड चलानेवाले मांझियों के साथ गप्पें लड़ाना शुरू कर दिया। बीच-बीच में जब कभी जरूरत होती, तब वह मल्लाहों के हाथों से लग्गी लेकर खेलना शुरू कर देता। जब किसी मांझी को तम्बाकू पीने की जरूरत होती, तो वह उसका डांड थाम लेता और जिस ओर घुमाना चाहिए, उसे होशियारी से घुमाने लगता।

शाम होने से पहले अन्नपूर्णा ने तारापद को बुलाकर कहा, "तुम रात के वक्त क्या खाते हो?"

तारापद बोला, "जो मिल जाता है, वही खा लेता हूं। अगर किसी दिन नहीं भी मिलता, तो यों ही रह जाता हूं।"

उस सुन्दर ब्राह्मण लड़के की ओर से मेहमानी कबूल करने की इस उदासीनता को देखकर अन्नपूर्णा को मन-ही-मन कुछ तकलीफ हुई। उनकी बड़ी इच्छा थी कि वे घर से भाग निकले हुए इस लड़के को कुछ खिला-पिलाकर सन्तुष्ट कर दें। लेकिन वह किस तरह सन्तुष्ट होगा, यह बात समझ में ही नहीं आती थी। नाव को किनारे लगवाकर अन्नपूर्णा ने नौकर द्वारा गांव से दूध, दही तथा मीठा मंगाने के लिए हो-हल्ला मचा दिया। तारापद ने पेट भरकर खाना खाया, लेकिन दूध को हाथ भी नहीं लगाया। चुपचाप रहनेवाले मतिबाबू ने भी उससे दूध पी लेने का आग्रह किया लेकिन उसे उनका आग्रह कबूल नहीं हुआ। वह कहने लगा, "दूध मुझे अच्छा नहीं लगता।"

नदी के ऊपर ही दो-तीन दिन बीत गए। रसोई बनाने से लेकर नाव चलाने तक के सभी कार्यों में तारापद अपनी इच्छा और मुस्तैदी के साथ

भाग लेता रहा। उसकी आंखों के सामने जो भी नजारा आता, उसकी अचरज-भरी दृष्टि तुरन्त उस ओर खिंच जाती थी तथा उसके सामने जो भी काम दिखाई पड़ता, उसे वह बहुत दिलचस्पी के साथ करने लगता था। उसकी दृष्टि, उसका मन तथा उसके हाथ-पांव हर वक्त चलते ही रहते थे। वह निरन्तर गतिशील प्रकृति की भांति हमेशा निश्चिन्त, उदासीन और साथ-ही-साथ कुछ-न-कुछ करता रहता था। हरेक आदमी की अपनी एक स्वतन्त्र विचार-भूमि होती है, लेकिन इस नीलाम्बरवाही विश्वप्रवाह और आनन्दपूर्ण लहर की तरह तारापद का जैसे भूत-भविष्य के साथ किसी तरह का कोई सम्बन्ध नहीं है। अपने सामने की ओर चलते जाना ही उसका एकमात्र कार्य है।

उसने इधर बहुत दिनों तक अनेक बिरादरियों में घुलमिलकर हर तरह की दिल बहलानेवाली विद्याएं पा ली थीं। बेफिक्र होने के कारण उसके साफ-स्वच्छन्द मन पर सभी बातें अद्भुत सरलता से अंकित हो जाती थीं। पांचाली, गीत, कथाएं, कीर्तन, गान, यात्रा तथा नाटक के लम्बे-लम्बे कथोपकथन उसे याद हो गए थे। एक दिन शाम को मतिलाल बाबू हमेशा की तरह अपनी पत्नी तथा लड़की को रामायण पढ़कर सुना रहे थे। अभी लव और कुश की कथा शुरू हुई थी कि तारापद अपने उत्साह-भरे जोश को किसी तरह नहीं रोक सका। वह नाव की छत से भीतर आकर बोला, "आप पुस्तक खोल लीजिए, मैं लव-कुश का गीत गाता हूं। आप लोग उसे सुनिए।"

यह कहकर उसने पांचाली गाना शुरू कर दिया। बांसुरी-से मीठे एवं भरे-भरे स्वर में वह दासुराय की तुकबन्दियों की तड़ातड़ बारिश करने लगा। सब मांझी दरवाजे के पास आकर झुक गए थे। उस शाम नदी के किनारे पर हास्य, करुणा और संगीत का एक अनोखा रस-भरा सोता बहने लगा। दोनों ही किनारे उत्सुकता से भर गए। बगल से दो नावें आ रही थीं, उनके यात्री जरा देर के लिए कान खड़े कर गर्दन उठाकर इसी ओर कान लगाए रहे और जब यह गीत खत्म हुआ तो सब लोग खुश मन

से सोचने लगे, 'ओह, यह सब जल्दी खत्म हो गया।'

अन्नपूर्णा की आंखें पानी से भर उठी थीं। वे चाहने लगीं कि वे बच्चे को अपनी गोद में बैठाकर तथा छाती से लगाकर खूब प्यार करें। मतिलाल बाबू विचार करने लगे, 'यदि किसी प्रकार मैं इस बच्चे को अपने पास रखूं तो अपने पुत्र का अभाव दूर हो जाए।' केवल नन्हीं लड़की चारुशशि के मन में ही डाह और जलन पैदा हो गई थी।

चारुशशि अपने माता-पिता की अकेली औलाद थी और प्यार-दुलार की एकमात्र अधिकारिणी थी। उसकी इच्छा और जिद का कोई अन्त नहीं था। खाने, पीने, पहनने, ओढ़ने तथा तरह-तरह के बाल बनाने में उसकी अपनी रुचि थी, लेकिन उसकी कोई भी एक राय मन में टिकी हुई नहीं थी। जिस दिन उसको कहीं बुलावे पर जाना होता, उस दिन उसकी मां को बराबर यही डर लगा रहता कि न जाने लड़की आज पहनने-ओढ़ने के बारे में क्या जिद पकड़ बैठे। अगर संयोग से किसी तरह उसके मन मुताबिक बाल नहीं बंधे तो फिर उस दिन उन्हें चाहे जितनी बार खोलकर तरह-तरह से क्यों न बांधा जाए, वे उसे पसन्द ही नहीं आते थे। जब चाहती, तभी रोना शुरू कर देती थी। सभी बातों में उसका यही हाल था। जब कभी उसका मन खुश रहता तब उसे किसी बात को मानने में किसी तरह का कोई ऐतराज नहीं होता। तब वह अपनी मां से लिपटकर बहुत-बहुत लाड़ जताती हुई बातें करती और इन्हें बहुत परेशान कर डालती थी। असल में, यह छोटी-सी लड़की एक मुश्किल पहेली थी।

वह लड़की अपने आजाद दिल के पूरे जोर का इस्तेमाल करके मन-ही-मन तारापद को कोसने और मारने लगी। उसने माता-पिता को भी हर तरह से परेशान कर डाला। घर की नौकरानियों को पीटने लगी। खाते वक्त रूठकर थाली फेंक देती। सभी बातों में बेमतलब शिकायत कर रो बैठती। तारापद की विद्याएं अन्य सब लोगों का जितना मन बहलाव करतीं, उतना ही ज्यादा उसका गुस्सा बढ़ने लगता। चारुशशि को

यह मानना ठीक नहीं लगता था कि तारापद में कोई गुण है। ज्यों-ज्यों तारापद के गुणों का सबूत मिलता गया त्यों-त्यों उसके मन का क्षोभ बढ़ता चला गया। जिस दिन तारापद ने लव-कुश का गीत गाया था, उस दिन अन्नपूर्णा ने मन में यह विचार किया था कि संगीत में जंगल के जानवरों को भी काबू में कर लेने की ताकत होती है, उसे सुनकर शायद आज मेरी लड़की का मन भी पिघल गया। यही विचार कर उन्होंने चारुशशि से पूछा था, "क्यों बिटिया! तुम्हें यह गाना कैसा लगा?" उनकी बात सुनकर चारु ने कोई स्पष्ट उत्तर न देकर जोर से अपना सिर हिला दिया। यदि उसके सिर हिलाने का भाषा में अनुवाद किया जाए तो निश्चित रूप से यही मालूम होगा कि उसे वह संगीत न तो तनिक भी अच्छा लगा था और न कभी लग ही सकता है।

अन्नपूर्णा इस बात को समझ गई थी। चारुशशि के मन में तारापद के लिए जलन पैदा हो गई है। इसीलिए उन्होंने उसके सामने तारापद के लिए प्रेम दिखाना छोड़ दिया। रात होते ही जब चारुशशि खा-पीकर जल्दी सो जाती, तब अन्नपूर्णा दरवाजे के पास आकर बैठ जाती और मतिबाबू तथा तारापद बाहर बैठ जाते। उस समय अन्नपूर्णा के कहने से तारापद अपना गाना शुरू करता। तब उसके गीत से नदी के किनारे की आराम करनेवालियों की सुन्दर छवि शाम के घने अंधेरे में मुग्धता और कोमलता बिखेरने लगती। अन्नपूर्णा का कोमल हृदय प्यार और सौन्दर्य से सराबोर हो उठता, उसी समय चारुशशि अचानक ही अपने बिस्तर से उठकर जल्दी-जल्दी वहां आ धमकती और बहुत गुस्से में भरकर कहती, "इस हो-हल्ले की वजह से मेरी नींद उचट जाती है। तुम मुझे सोने भी दोगे या नहीं?" माता-पिता उसे अकेली सोने के लिए भेजकर, तारापद को घेरकर संगीत का आनन्द उठाते हैं, यह उसे बरदाश्त नहीं होता था।

तारापद को इस दमकती काली आंखोंवाली लड़की का स्वाभाविक तीखापन बहुत आश्चर्यजनक लगता। वह चारु को कहानी सुनाकर, गीत गाकर एवं बांसुरी बजाकर तरह-तरह से मनाने की कोशिश करने लगा,

लेकिन वह किसी तरह भी कामयाब नहीं हुआ। केवल दोपहर को नदी में नहाते समय तारापद का गोरा शरीर जब गहरे पानी में बहुत आराम से हरकत करता रहता, तब चारु को ऐसा लगता था, जैसे कोई जवान जल-देवता क्रीड़ा कर रहा हो, और केवल यही समय ऐसा होता है, जब उसका मन तारापद की ओर खिंचे बिना नहीं रहता था। वह इस समय का इन्तजार बराबर करती रहती थी। जब तारापद नदी में कूदकर तैरने लगता, वह सभी ओर से ध्यान हटाकर ऊनी गुलूबन्द बुनते-बुनते बीच-बीच में बहुत लापरवाही से उसका तैरना दबी आंखों से देखा करती थी।

नन्दीग्राम कब निकल गया, तारापद को इसका पता ही नहीं चला। वह बड़ी नाव कभी पाल तानकर और कभी रस्से से खींचकर धीमी गति में अनेकों नदियों की शाखा-उपशाखाओं में होकर चलने लगी। नाव के मुसाफिरों के दिन भी इन नदी-उपनदी के समान ही हैं, जो सहज सौन्दर्य और विचित्रता में से सहज सम्पूर्ण चाल से कल-कल सुर में बह रहे हैं और जिसमें किसी तरह से भी कोई जल्दी नहीं है। दोपहर को नहाने और खाने में काफी वक्त बीत जाता था। फिर शाम होने से पहले ही किसी बड़े गांव अथवा घाट के किनारे झींगुरों के स्वर और जुगनुओं की जगमगाहट-भरे जंगल के नजदीक नाव को बांध दिया जाता था।

इस प्रकार दसवें दिन नाव कटहलियां जा पहुंची। जमींदार के आने की खबर पाकर उसके घर से पालकी तथा घोड़े भेजे गए। लाठीधारी-बन्दूकधारी सिपाही तथा प्यादों ने आकर बारम्बार बन्दूक की आवाज करके समाज में जरूरत से ज्यादा चहल-पहल ला दी।

इस सब समारोह में जितनी देर होने की थी, उस बीच में तारापद नाव से उतरकर एक बार जल्दी-जल्दी सारे गांव में घूम आया। दो-तीन घंटे के भीतर ही उसने किसी को भाई साहब, किसी को चाचा, किसी को जीजी और किसी को मौसी कहकर गांव-भर में मेल कर लिया। उसके लिए कहीं भी कोई रोक-टोक नहीं थी, इसीलिए वह इतनी जल्दी सबसे

जान-पहचान कर लेता था। देखते-देखते कुछ ही दिनों में उस गांव के ज्यादातर लोगों के दिल पर उसने अपना कब्जा जमा लिया।

इतनी आसानी से सबका दिल जीतने का कारण यह था कि तारापद सभी के साथ बराबरी से पेश आता था। वह किसी भी तरह के विशेष संस्कार में बंधा हुआ न था। सभी हालात में, सभी कामों के लिए उसमें एक तरह का कुदरती झुकाव था। बच्चों में वह पूरी तरह स्वाभाविक बच्चा था, लेकिन उनसे बेहतर एक स्वतन्त्र था। बूढ़ों में यदि बड़ा-बूढ़ा नहीं तो निरा बच्चा भी न था। चरवाहों के साथ वह चरवाहा था, लेकिन उसका ब्राह्मणत्व उससे अलग नहीं होता था। वह सबके कामों में सदा के सहयोगी की तरह, जानकार की तरह दखल दे सकता था। जब वह हलवाई की दुकान में गप्पे लड़ाने बैठ जाता तो हलवाई उससे यह कहकर अपना कार्य पूरा कराने के लिए बेझिझक चला जाता था, "पंडित भाई, तुम जरा यहीं बैठे रहना। मैं अभी आता हूं।" जब वह चला जाता तो तारापद चेहरे पर शिकन लाए बिना दुकान पर बैठा हुआ, बड़े मजे से पत्तलों के सहारे मक्खियां उड़ाया करता था। मिठाई बनाने में वह बहुत होशियार है। बुनाई के काम में भी अनजान नहीं है। और कुम्हार का चाक चलाने में भी वह अनाड़ी नहीं है।

तारापद ने पूरे गांव को अपने वश में कर लिया; लेकिन गांव की एक लड़की की ईर्ष्या पर अभी तक जीत हासिल नहीं कर सका। शायद यह जानकर ही कि लड़की उसे गांव से बहुत दूर निकाल फेंकने की इच्छा रखती है, वह इतने दिनों तक इस गांव में टिक रहा था।

लेकिन चारुशशि ने इस बात का श्रेष्ठतम प्रमाण उसके सामने हाजिर कर दिया कि स्त्री के मन के रहस्य का उसकी बचपन की उम्र में भी भेद करना बहुत कठिन होता है।

ब्राह्मण महाराज की लड़की सोनामणि पांच वर्ष की आयु में विधवा हो गई थी। वह चारु की हमउम्र और सखी थी। तबीयत ठीक न होने के कारण वह कलकत्ते से आई हुई अपनी सहेली से कुछ दिन नहीं मिल

सकी। जिस दिन वह स्वस्थ होकर मिलने के लिए आई, उस दिन बिना किसी वजह के ही उन दोनों सखियों में कुछ मनमुटाव-सा हो गया।

चारुशशि ने एक बड़ी भूमिका बांधकर कहानी की शुरुआत की। उसने सोचा था कि यह तारापद नामक बाल-रत्न के हरण की कहानी पूरे ब्यौरे के साथ सुनाकर अपनी सखी की उत्सुकता और कौतूहल को आखिरी सिरे पर चढ़ा देगी। लेकिन जब उसे यह मालूम हुआ कि तारापद सोनामणि के लिए अनजाना नहीं है और वह उसकी माता को मौसी कहता है, और सोनामणि उसे 'भैया' कहकर पुकारती है और यह कि तारापद ने सोनामणि तथा उसकी मां को केवल बांसुरी बजाकर ही नहीं सुनाई, बल्कि उसके कहने पर उसने उसके लिए भी अपने हाथ से बांसुरी बनाकर दे दी है। इसी तरह कितनी ही बार ऊंची डाली पर से फल तथा कांटेवाली टहनी पर से फूल तोड़कर भी दिए हैं, तब चारुशशि के मन में एक दबा हुआ शूल-सा बिंध गया। चारु यह समझती थी कि तारापद केवल उन्हीं लोगों का तारापद है। वह बहुत छिपे-छिपे तौर पर उसकी संरक्षिका है। बाहरवाले उसकी थोड़ी-बहुत आहट भले ही पा लें, लेकिन वे उसके पास नहीं पहुंच सकते और जो लोग दूर रहकर उसके रूप-गुण पर लट्टू हैं, वे चारु को धन्यवाद दिए बिना न रहेंगे। लेकिन इस समय चारुशशि यह सोच रही थी कि ऐसा अद्भुत, दुर्लभ और दैवी ब्राह्मण बालक सोनामणि को कैसे सहज ही ऐसे मिल गया। अगर हम लोग इसे ऐसे ध्यान से न लाते, सहेज न रखते तो सोनामणि उसे कहां से देख पाती? वह सोनामणि का भैया है, यह सुनकर तो पूरी देह में आग-सी लग जाती है। जिस तरह तारापद के लिए चारुशशि मन-ही-मन जलन रखती थी और उसकी बिगाड़ करने की कोशिश में लगी रहती थी, उसी के एकाधिकार को लेकर मन में ऐसी बेचैनी क्यों हुई, इस रहस्य को भला कौन जान सकता है?

उस दिन इसी मासूम-सी बात पर सोनामणि के साथ चारु की अनबन हो गई और तभी वह तारापद की कोठरी में जाकर उसकी प्रिय बांसुरी

को निकालकर, उस पर छलांग लगाती हुई, बेरहमी से उसे तोड़ने तथा कुचलने की कोशिश करने लगी।

जिस समय चारुशशि पर्याप्त जोश से उस बांसुरी को तोड़ने लगी थी, ठीक तभी तारापद कहीं से अपनी कोठरी के अन्दर आया। वह लड़की की इस भयानक छवि को देखकर दंग रह गया। बोला, "चारु, मेरी बांसुरी को इस तरह क्यों तोड़ रही हो?" यह सुनकर तोड़ूंगी, फिर तोड़ूंगी, कहती हुई चारु उस पर दो-चार लात जमाकर हांफती और रोती हुई कोठरी से निकलकर बाहर भाग गई। तारापद ने बांसुरी को उलट-पलटकर देखा कि उसमें अब कुछ जान नहीं रही है। वह इस निर्दोष और पुरानी बांसुरी की ऐसी गत देखकर अपनी हंसी न रोक सका। दिन-प्रतिदिन चारु उसके लिए ज्यादा-से-ज्यादा उत्सुकता का विषय बनती जा रही थी।

तारापद के लिए वे तस्वीरोंवाली किताबें, जो मतिलाल बाबू के पुस्तकालय में रखी थीं, एक और उत्सुकता की चीज थीं। वह बाहरी दुनिया का तो काफी जानकार हो चुका है, लेकिन तस्वीरों की दुनिया में किसी तरह भी दाखिल नहीं हो पा रहा है। अपने मन में कल्पना द्वारा बहुत कुछ पूरा कर लिया करता है, लेकिन उससे मन की अतृप्ति नहीं मिट पाती।

एक दिन मतिलाल बाबू ने तारापद का तस्वीरोंवाली किताबों से लगाव देखकर कहा, "अंग्रेजी पढ़ोगे तभी उन सब तस्वीरों का मतलब समझ सकोगे।" तारापद तुरन्त बोल उठा, "पढ़ूंगा।"

मति बाबू को यह सुनकर बहुत खुशी हुई। उन्होंने तुरन्त स्कूल के हेडमास्टर रामरतन बाबू को बुलाकर शाम को रोज तारापद को अंग्रेजी पढ़ाने का भार सौंप दिया।

तारापद अपने तेज हाफिजे और बेहद उत्साह के साथ अंग्रेजी पढ़ने में जुट गया। जैसे वह पुरानी दुनिया से अपना वास्ता तोड़ करके किसी नए दुर्गम राज्य में घूमने निकला हो। अब उसे मोहल्ले के लोग देख ही नहीं

पाते थे। शाम को जब वह नदी किनारे अकेले में जल्दी-जल्दी टहलता हुआ पाठ याद करता है, तब उसको चाहनेवाले बच्चे दूर से ही आदर के साथ उसका यह काम देखते रहते हैं; उसकी पढ़ाई में बाधा डालने की हिम्मत नहीं करते।

चारु भी अब उसे कम ही देख पाती थी। तारापद पहले अन्दर जाकर अन्नपूर्णा की स्नेह की दृष्टि-छाया में बैठकर खाना खाता था, लेकिन इसमें कभी-कभी उसे देर हो जाया करती थी। इस कारण उसने मतिबाबू से कहकर अपने खाने का इन्तजाम बाहर ही करा लिया। अन्नपूर्णा ने इस पर दुखी होकर एतराज किया, लेकिन मति बाबू ने तारापद की पढ़ाई के उत्साह से खुश होकर, इस नए इन्तजाम में छेड़छाड़ करना ठीक नहीं समझा। चारु भी एक दिन अंग्रेजी सीखने की जिद कर बैठी। पहले तो उसके मां-बाप ने अपनी जिद्दी लड़की की इस पेशकश को मजाक की बात समझकर प्यार से हंसी में उड़ा दिया, लेकिन जब चारु ने उस पेशकश के मजाकवाले हिस्से को रो-रोकर आंसुओं से धोकर साफ कर दिया, तब लाचार होकर उन्हें उसके गम्भीर भाव को कबूल करना पड़ा। चारु भी उन्हीं हेडमास्टर के पास तारापद के साथ ही पढ़ने लगी।

लेकिन इस शोख लड़की के लिए पढ़ना-लिखना स्वाभाविक नहीं था। उसने खुद तो कुछ सीखा नहीं, उलटे तारापद की पढ़ाई में भी रोड़े अटकाने लगी। वह पढ़ाई में पीछे रह जाती; अपना सबक याद नहीं कर पाती, फिर भी तारापद से किसी भी तरह पीछे नहीं रहना चाहती थी। अगर तारापद उसे छोड़कर नया सबक पढ़ना चाहता तो वह गुस्सा हो उठती थी, यहां तक कि रोना शुरू कर देती थी। तारापद पुरानी किताब खत्म करके नई लाता तो उसके लिए भी नई किताब खरीदनी पड़ती। छुट्टी के वक्त तारापद अपने कमरे में बैठा लिखता और सबक याद किया करता था, यह भी उसे जलन के मारे सहन नहीं होता था। वह छिपकर उस कमरे में जाती और कापी पर स्याही फैलाकर कलम छिपा देती। यहां तक कि उसके पढ़ने की किताब के पन्ने भी फाड़ आती।

तारापद इस लड़की की तोड़फोड़ को अचरज के साथ सहन करता, परन्तु कभी-कभी बरदाश्त से बाहर होने पर मार भी बैठता था। फिर भी वह उसे काबू में न ला सका।

अचानक एक दिन रास्ता निकल आया। तारापद बहुत गुस्सा करके और निराश होकर अपनी स्याही पड़ी कापी को फाड़-फूड़कर चुपचाप बैठा था। दरवाजे के पास आते ही चारु समझ गई कि आज उस पर मार पड़ेगी, लेकिन उसकी आशा की पूर्ति न हुई। तारापद उससे कुछ न कहकर, उसी तरह चुपचाप बैठा रहा। लड़की कमरे के अन्दर और बाहर इधर से उधर घूमती-फिरती रही। बार-बार उसके इतने पास पहुंच जाती थी कि अगर तारापद चाहता तो बड़ी आसानी से उसकी पीठ पर थप्पड़ जमा सकता था। लेकिन ऐसा न करके तारापद चुपचाप ही बैठा रहा। इससे चारु को बड़ा अचरच हुआ। उसने जिन्दगी में यह कभी महसूस नहीं किया था कि माफी कैसे मांगी जाती है। लेकिन उसका छोटा-सा बेचैन दिल अपने सहपाठी से माफी मांगने के लिए बार-बार कहने लगा। आखिर में कोई और चारा न देखकर उसने फटी हुई कापी का एक टुकड़ा उठाकर उस पर लिखा, 'मैं अब तुम्हारी कापी पर कभी स्याही नहीं डालूंगी।' यह लिखकर वह उस पर तारापद की दृष्टि खींचने के लिए कई तरह से कोशिश करने लगी। यह देखकर तारापद अपनी हंसी न रोक सका। चारु तब शर्म और गुस्से के मारे पागल-सी हो उठी और जल्दी ही कमरे से बाहर भाग गई। असल में जिस कागज के टुकड़े पर उसने अपने हाथ से जो भाव जाहिर किए हैं, उसे अन्तिम दशा में पहुंचाकर इस अपार संसार से गायब करने के बाद ही उसके दिल को चैन मिल सकता था।

इधर शर्मीली सोनामणि दो-एक दिन पढ़ाईवाले कमरे में बाहर से झांक-झांककर चली गई है। उसकी सहेली चारुशशि के साथ उसका और सभी बातों में वह विशेष प्यार बरकरार था, लेकिन तारापद के बारे में वह चारु को बहुत डर-डरकर और प्यार-भरी नजरों से देखने लगी थी। जब चारु अन्दरवाले मकान में रहती, तब सोनामणि बहुत झिझकते हुए तारापद

के पास आकर खड़ी हो जाती। तारापद अपनी किताब से नजर उठाकर, प्यार से पूछता, "क्यों सोना, क्या खबर है? मौसी तो ठीकठाक हैं न?"

सोनामणि कहती, "तुम बहुत दिनों से वहां आए ही नहीं। तुम्हें मां ने बुलाया है। मां की कमर में दर्द है। इससे वे यहां नहीं आ सकीं।"

तभी अक्सर चारु आ पहुंचती। सोनामणि यह देखकर घबरा जाती, जैसे वह अपनी ही सखी की सम्पत्ति को छिपकर चुराने आई है। चारु अपने गले को तेज करके आंख-मुंह घुमाकर कहती, "क्यों सोना, तू यहां पढ़ते वक्त शोर मचाने आई है? मैं बाबू जी से जाकर अभी कहती हूं।" जैसे वह स्वयं तारापद की बहुत बड़ी शुभचिन्तक हो और दिन-रात इसी फिक्र में रहती हो कि तारापद की पढ़ाई में किसी भी तरह की जरा भी कोई बाधा न पड़ने पाए। लेकिन वह खुद अभी तारापद के पढ़ने के कमरे में किस इरादे से आई थी, वह भगवान से छिपा नहीं था और तारापद भी यह अच्छी तरह जानता था। लेकिन सोनामणि बेचारी डरकर उसी वक्त बहुत-सी झूठी-मूठी बातें गढ़ना शुरू कर देती। आखिर में, जब चारु उसे हेठी दिखाते हुए 'झूठी कहीं की' कहकर बुलाती तो वह शर्माकर और डरते हुए हार मानकर दुखी मन से अपने घर लौट जाती। तब कोमल हृदय तारापद उसे बुलाकर कहता, "सोना, अच्छा, आज शाम को मैं तुम्हारे घर आऊंगा।" चारु यह सुनकर सांप-सी फुंफकारकर कहती, "हां, हां, वहां क्यों नहीं जाओगे। तुम्हें सबक थोड़े ही याद करना है; मैं मास्टर साहब से सबकुछ कह दूंगी।"

तारापद चारु के इस शासन की बिना परवाह किए दो-एक दिन शाम को अपनी पंडितानी मौसी के घर गया था। चारु ने तीसरी या चौथी बार खोखली हुकूमत न करके, चुपचाप उसके कमरे के दरवाजे की सांकल बन्द कर दी और रसोई घर से लाकर ताला भी लगा दिया। लगातार कई घंटे बन्द रखने के बाद आखिर में जब शाम गुजर जाने पर खाने का वक्त हुआ तब चारु ने दरवाजा खोल दिया। गुस्से में भी तारापद शान्त ही रहा और बिना कुछ खाए-पिए ही जाने के लिए तैयार हो गया। तब

पछतावे और दुख से परेशान लड़की बड़ी विनय के साथ हाथ जोड़कर बार-बार कहने लगी, "मैं तुम्हारे पांव पड़ती हूं, अब ऐसा नहीं करूंगी। तुम खाना खाकर जाओ।" तारापद, जब ऐसे भी बस में न आया तो धीरज खोकर उसने रोना शुरू कर दिया। आखिर में, तारापद धर्म-संकट में पड़कर खाना खाने के लिए बैठ गया।

चारु ने कई बार पूरे मन से प्रतिज्ञा की है कि वह तारापद के साथ अच्छा बरताव करेगी और कभी एक पल के लिए भी उसे परेशान नहीं करेगी; लेकिन सोनामणि वगैरह पांच अन्य लोगों के बीच न जाने उसका मिजाज कैसा हो जाता है, उस वक्त उसका अपने पर कोई वश नहीं चलता। जब वह लगातार कई दिनों तक ठीक-ठाक बरतने लगती है, तब तारापद, किसी आनेवाली मुसीबत की बाढ़ के लिए सावधान होकर तैयार होने लगता है। क्योंकि कुछ भी नहीं कहा जा सकता था कि हमला कब, किस बात पर और किस ओर से होगा। उसके बाद तेज आंधी, आंधी के बाद जोर की वर्षा और उसके बाद प्रसन्न स्वच्छ शान्ति, यह सिलसिला चलता रहता था।

इसी तरह लगभग दो साल गुजर गए। तारापद इतने लम्बे वक्त तक कहीं भी नहीं रुका था। शायद उसका मन पढ़ने-लिखने में किसी अद्भुत आकर्षण से बंध गया था, शायद उम्र के साथ-साथ उसके स्वभाव में बदलाव शुरू हो गया था या शायद उसका मन स्थाई रूप से कहीं एक जगह पर टिककर दुनियादारी और आजादी भोगने की ओर झुक रहा था। इसके अलावा, शायद उसके साथ पढ़नेवाली लड़की की रोज की शरारत और शोख खूबसूरती अनजाने में उसके दिल पर जाल फैला रही हो, यह भी कोई अचरच की बात नहीं है।

चारु की उम्र इधर ग्यारह पार करना चाहती है। मति बाबू ने काफी खोज-ढूंढ़ करने के बाद दो-तीन अच्छे-अच्छे रिश्तों की बातचीत शुरू की। उन्होंने लड़की की उम्र देखकर उसका अंग्रेजी पढ़ना और बाहर निकलना

बन्द कर दिया। अचानक ही इस रुकावट से चारु ने घर के अन्दर एक तूफान खड़ा कर दिया।

तब एक दिन अन्नपूर्णा ने मति बाबू को बुलाकर कहा, "तुम लड़के के लिए इतने परेशान क्यों हो रहे हो? तारापद भी तो अच्छा लड़का है। वह तुम्हारी लड़की को भी पसन्द है।"

मति बाबू ने यह सुनकर बहुत आश्चर्य जाहिर करते हुए कहा, "यह कैसे मुमकिन हो सकता है। तारापद के कुल-शील का भी तो कोई पता नहीं है। मेरी यही ले-देकर एक लड़की है। मैं इसे किसी अच्छे घर में देना चाहता हूं।"

एक दिन रायडांगा के जमींदारों की ओर से कुछ लोग लड़की को देखने आए। चारु को पहना-उढ़ाकर आहर लाने की बहुत कोशिश की गई, लेकिन वह किसी तरह बाहर न निकली, बल्कि अपने कमरे का दरवाजा बन्द करके अन्दर ही बैठी रही। मति बाबू ने उसके कमरे के बाहर खड़े होकर बहुत समझाया-बुझाया और अन्त में फटकार भी बताई, लेकिन सब बेकार ही रहा। आखिर में मति बाबू को निराश होकर बाहर जाकर रायडांगा से आए हुए लोगों से झूठ-मूठ कहना पड़ा कि लड़की की तबीयत एकाएक ही खराब हो गई है, इसलिए आज उसे बाहर नहीं लाया जा सकेगा। बस, उन लोगों ने समझ लिया कि लड़की में जरूर कोई ऐब है, इसलिए यह बात बनाई गई है।

मति बाबू तब तारापद के बारे में सोचने लगे, 'लड़का अच्छा है, उसे अपने घर में ही रखा जा सकता है, इस तरह लड़की को पराये घर नहीं जाना पड़ेगा।' उन्होंने सोच-विचार कर यह भी देखा कि उनकी चंचल और नटखट लड़की की शरारतें उनकी प्यार-भरी नजर में भले ही अपराध न हो, लेकिन ससुराल में उन्हें कोई सहन नहीं करेगा।

इसके बाद इस बारे में अन्नपूर्णा से भी उनकी बहुत-सी बातें हुईं। आखिर में तय किया गया कि तारापद के गांव आदमी भेजकर, वंश के बारे में पता लगाया जाए। आदमी भेजा गया और पता लगाकर वह

आया। उसने बताया, कुल अच्छा है, लेकिन दौलत की कमी है। तब मति बाबू ने लड़के की मां और भाइयों के पास विवाह का प्रस्ताव भेजा। तारापद के घरवाले मारे खुशी के फूले न समाए। उन्होंने तुरन्त ही अपनी सहमति दे दी।

लड़के की मां और भाई ब्याह का शुभ दिन दिखवाने लगे। लेकिन दिमाग से मन की बात जल्दी जाहिर न करनेवाले मति बाबू ने यह राज किसी पर जाहिर नहीं होने दिया।

सबसे बड़ी परेशानी यह हुई कि चारु को घर के अन्दर रोककर नहीं रखा जा सका। वह बीच-बीच में आंधी की तरह तारापद के कमरे में पहुंच ही जाती थी। वह कभी प्यार ओर कभी गुस्से की बातें कहकर तारापद का चैन हराम कर देती और पढ़ने-लिखने में ऐसी अड़चन पैदा कर देती थी कि वह बेचारा परेशान हो उठता था। इतना सबकुछ होते हुए भी आजकल एक नई बात यह पैदा हुई कि इस निरासक्त और स्वच्छन्द मिजाज ब्राह्मण लड़के के मन में कभी-कभी पल भर के लिए बिजली की तरंग की तरह एक अनोखी चंचलता का अहसास होने लगता था। जिस बालक का हलका मन हमेशा बिना रोक-टोक के वक्त की लहरों के साथ सामने की ओर बहता चला गया था, वह आजकल कभी-कभी उलझकर एक अजीब दिवास्वप्न के जाल में फंस जाता था। वह किसी-किसी दिन पढ़ना छोड़कर मति बाबू के पुस्तकालय में जाकर तस्वीरोंवाली किताबों के पन्ने उलटने लगता। उन तस्वीरों को देखकर जो कल्पना की दुनिया बनती, वह पहले से बिलकुल अलग और ज्यादा रंगीन होती। वह चारु के अजनबी बरताव का अब पहिले की तरह मजाक नहीं उड़ाता और ऊधम मचाने पर उसे मारने का विचार भी मन में नहीं आने देता था। अपने में यह बदलाव और उसके प्रति आकर्षण का भाव खुद उसी को एक सपने की तरह लगने लगा।

मति बाबू ने सावन मास में ब्याह का शुभ दिन तय करके तारापद की मां तथा भाइयों को लाने के लिए आदमी भेज दिया; लेकिन यह बात

तारापद पर जाहिर नहीं होने दी। फिर उन्होंने अपने कलकत्ता के कार्यालय को चीजों की लम्बी लिस्ट भेज दी और यह भी लिख दिया कि फौजी बैंड-बाजे का इन्तजाम किया जाना चाहिए।

आसमान में बरसाती मौसम के बादल छा गए। गांव की नदी अब भी सूखी-सी पड़ी थी। बीच-बीच में, गड्ढों में कहीं-कहीं पानी जमा था। उस गन्दे पानी में छोटी-छोटी नावें डूबी पड़ी थीं और सूखी नदी की रेत पर बैलगाड़ियों के पहियों की लकीरों के निशान पड़ गए थे। इतने में एक दिन मायके से लौटी हुई पत्नी की तरह गांव की सूखी छाती में न जाने कहां पानी की तेज धारा आ पहुंची। देखते-देखते गांव की नदी का किनारा लड़के-लड़कियों से घिर गया। बच्चे पानी देखकर खुशी के मारे नाचने और पानी में उतर-उतरकर नहाने लगे। झोंपड़ियों में रहनेवालियों का झुंड अपनी प्यारी सहेलियों को देखने के लिए बाहर निकल आया। सूखे बेजान गांव को जैसे किसी एक जबरदस्त प्राणवायु ने जगा दिया। छोटी-बड़ी अलग-अलग तरह की नावें आने-जाने लगीं। नदी विदेशी मांझी-मल्लाहों के गीतों से गूंज उठी। दोनों किनारों के गांवों में जो लोग साल-भर से अब तक चुपचाप अपने-अपने रोजगार के काम में लगे थे, उनमें एक तरह की अजीब हरकत आ गई।

इन्हीं दिनों कुडुलकाटा के नाग बाबुओं के इलाके में रथ-यात्रा का मेला लगता था। एक दिन, दिन छिपने के बाद चांदनी से चमकते हुए घाट पर आकर तारापद ने देखा, किसी नाव में सौदागर, किसी नाव में नाटक- मंडलीवाले, किसी नाव में बाजेवाले, किसी नाव में कलकत्ते की सर्कस पार्टीवाले जोर-जोर से गाते-बजाते मेले के लिए चले जा रह थे। तारापद का मन इसे देखते ही एक अपूर्व उत्साह से भर उठा। इतने में पूरब में घने बादलों ने आकर नदी के ऊपर जैसे काला चंदोवा-सा तान दिया। पुरवैया हवा तेजी से चलने लगी, नदी का पानी कलकल सुर में हंस उठा और नदी किनारे के झूमते पेड़ों की कतारों में अंधेरा-सा छा गया। मेंढक बोलने लगे और झींगुरों ने अपनी झंकार की आरी से अंध

ेरों को चीरना शुरू कर दिया। तारापद के सामने आज विश्वव्यापी रथ-यात्रा शुरू हो गई। रथ के पहिए घूमने लगे, झंडा हवा में फहराने लगा, धरती डोल उठी, हवा दौड़ने लगी, नदी बहने लगी, नाव चलने लगी, और बाजे बजने लगे। देखते-देखते बादल गरज उठे, बिजली चमकने लगी, दूर तक फैले हुए अंधेरे में से मूसलाधार बारिश की खुशबू आने लगी, केवल नदी-किनारे का एक कटहलिया गांव ही अपने दीये बुझाकर चैन से सोता रहा।

अगले दिन सुबह ही तारापद की मां और भाई वगैरह कटहलिया आ पहुंचे। उनके साथ-साथ सामान से भरी हुई तीन बड़ी-बड़ी नावें भी कलकत्ता से आ पहुंचीं। उसी दिन सुबह सोनामणि एक दोने में थोड़ा-सा अचार और दूसरे दोने में अमाहट लेकर डरती हुई तारापद के कमरे के दरवाजे के पास चुपचाप आकर खड़ी हुई। लेकिन तारापद वहां दिखाई नहीं दिया। प्यार, दोस्ती का साजिश-भरा बन्धन उस ब्राह्मण को अच्छी तरह से बांधने भी न पाया था कि इससे पूर्ण ही वह सारे गांव का दिल चुराकर, उस बादलों से ढंकी अंधेरी बारिश की रात में, निर्विकार उदासीन मां धरती की विस्तृत गोद में कहां जा छिपा, यह कोई भी नहीं जान सका।

•••

यह पुस्तक आपको कैसी लगी?
यदि पसन्द आई तो

घरेलू लाइब्रेरी योजना

के सदस्य बनिए और घर बैठे अपनी मनपसन्द पुस्तकें प्राप्त कीजिए। सूचीपत्र एवं नियमावली के लिए हमें लिखें :

हिन्द पॉकेट बुक्स
जे-40, जोर बाग़ लेन, नई दिल्ली-110003

विश्व के महान कथा–शिल्पी **रवीन्द्रनाथ टैगोर** का बाल कहानी–संग्रह

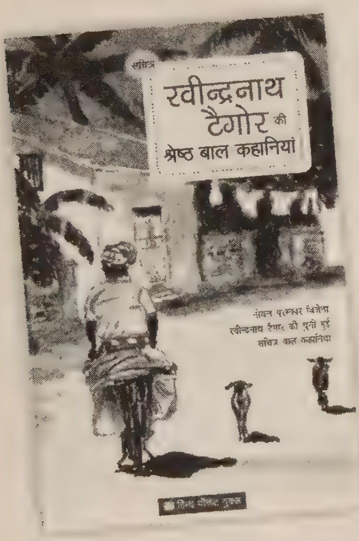

रवीन्द्रनाथ टैगोर की श्रेष्ठ बाल कहानियां

विश्व के नोबल पुरस्कार विजेता महान साहित्यकार रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अपनी रचनाओं से सारी दुनिया का मन मोह लिया, तो फिर वह बच्चों और किशोरों के मन के संसार को क्यों नहीं छू सकते थे? इसका सीधा-सा जवाब उनकी अमर कहानी 'काबुलीवाला' है, जिसने हर उम्र के दिलों पर राज किया और आज भी जिसकी लोकप्रियता आसमान छू रही है। इसी तरह 'छुट्टी', मुन्ना बाबू की वापसी', 'रामकनाई की बेवक़ूफ़ी' और 'पोस्टमास्टर' जैसी कहानियों को हम इसके क़रीब बैठा सकते हैं।

इस पुस्तक में इनको मिलाकर रवीन्द्र बाबू की ग्यारह कहानियां दी गई हैं, जो बच्चों और किशोरों को बांधकर अपने साथ दूर तक ले जाएंगी और उन्हें जीवन में एक बेहतर इंसान बनने के लिए प्रेरित करेंगी। ये सभी कहानियां मनोरंजन के साथ-साथ भावनाओं को शिक्षा के उजाले से लबालब भर देंगी।

विश्व के महान कथाकार रवीन्द्रनाथ ठाकुर
का कहानी–संग्रह

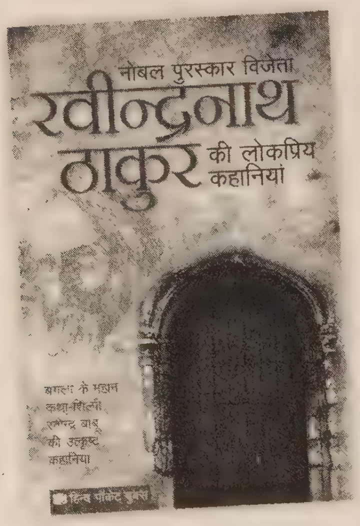

रवीन्द्रनाथ टैगोर की लोकप्रिय कहानियां

बंगला-साहित्य में छोटी कहानियों का सूत्रपात करने वाले रवीन्द्रनाथ ठाकुर ही हैं। एक समालोचक ने इनकी कहानियों के सम्बन्ध में लिखा है कि रवीन्द्रनाथ का काव्य चाहे चिरजीवी हो या न हो, पर ये कहानियां उन्हें निश्चित रूप से अमर कीर्ति देंगी।

रवीन्द्र बाबू की ऐसी ही लोकप्रिय कहानियों का यह संग्रह अपने में विविधता और उत्कृष्टता लिए हुए है। बेहद मार्मिक ये कहानियां पाठक को बांध लेती हैं।

विश्व के महान साहित्यकार रवीन्द्रनाथ ठाकुर ऐसे अग्रणी लेखक थे, जिन्हें नोबल पुरस्कार जैसे विश्वस्तरीय सम्मान से विभूषित किया गया। उनकी अनेक कृतियां प्रमुख भारतीय और विदेशी भाषाओं में अनूदित होकर चर्चित हुई हैं।

बंगला की सुप्रसिद्ध कहानियों का अनमोल संग्रह

बंगला की सर्वश्रेष्ठ कहानियां

बंगला साहित्य, कला और संस्कृति सदा से ही उच्च शिखर पर विराजमान रही है। साहित्य ने तो विश्व के आकाश में भी अपनी प्रतिष्ठा का ध्वज लहरा दिया और महान् साहित्यकार रवीन्द्रनाथ ठाकुर को साहित्य का नोबल पुरस्कार मिला। बंगला रचनाकारों ने कहानी और उपन्यास जैसी विधाओं में भी अपना सर्वश्रेष्ठ दिया। बंगला कहानियों ने तो समूचे देश के पाठकों और लेखकों को अभिभूत कर दिया। हिन्दी में इनके सर्वाधिक अनुवाद हुए और बहुचर्चित रहे।

इस संकलन में बंगला के प्रख्यात लेखकों की 12 सर्वाधिक चर्चित कहानियां दी गई हैं। ये कहानियां पढ़कर सभी पाठक अनुमान लगा सकते हैं कि बंगला कहानी ने वास्तव में कथा-नक्षत्र को छुआ है।

विश्व के महान कथा–शिल्पी **रवीन्द्रनाथ टैगोर** का बाल कहानी–संग्रह

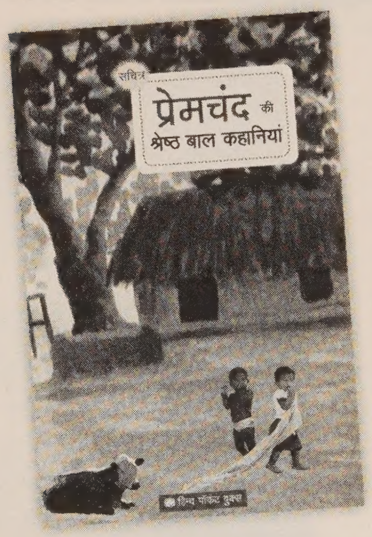

प्रेमचंद की श्रेष्ठ बाल कहानियां

यह बात इतनी गौरवमय है कि किसी कथाकार को कथा-सम्राट का दर्जा दिया गया और जिसे दुनिया-भर में स्वीकार किया गया। इतने ही महान थे, कथा-गुरु प्रेमचन्द। 14 उपन्यासों और लगभग 300 कहानियों के लेखक ने जीवन के हर रंग की कहानी लिखी और हर उम्र के पाठक के मन में उमंगें जगाईं। इसीलिए हम कहेंगे कि प्रेमचन्द ने बाल और किशोर मन की गहराइयों में भी झांककर देखा, उन्हें दुलारा और प्यार दिया।

'ईदगाह' और 'गुल्ली-डंडा' जैसी बेजोड़ कहानियां इसका सबसे बड़ा उदाहरण हैं। 'दो बैलों की कथा', 'रामलीला' और 'बूढ़ी काकी' भी इसी श्रेणी में रखी जाने वाली कहानियां हैं। इस प्रकार इस संकलन में कुल 7 कहानियां हैं, जो बच्चों और किशोरों के संसार को प्रेरणा और उत्साह से भर देंगी।

हिन्द पॉकेट बुक्स

देश-भर के प्रमुख रेलवे, रोडवेज व अन्य बुक स्टालों से लें, न मिलने पर हमें लिखें।
जे-40, जोरबाग लेन, नई दिल्ली-110003

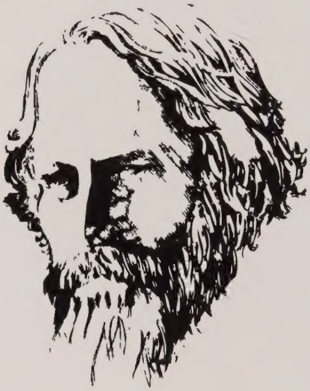

रवीन्द्रनाथ टैगोर की श्रेष्ठ कहानियां

रवीन्द्रनाथ टैगोर बंगला साहित्य में कहानियों के प्रणेता माने जाते हैं और समालोचक इनकी कहानियों को अमर कीर्ति देनेवाली बताते हैं।

यह पुस्तक रवीन्द्र बाबू की श्रेष्ठ कहानियों का संकलन है, जो कला, शिल्प, शब्द-सौन्दर्य, गठन-कौशल, भाव-पटुता, अभिव्यक्ति की सरसता आदि का बेजोड़ नमूना है।

विश्व के महान साहित्यकार रवीन्द्रनाथ टैगोर ऐसे अग्रणी लेखक थे, जिन्हें नोबल पुरस्कार जैसे सम्मान से विभूषित किया गया। उनकी अनेक कृतियां प्रमुख भारतीय और विदेशी भाषाओं में अनूदित होकर चर्चित हुईं।

हिन्द पॉकेट बुक्स

Rs. 95
कहानियां
SHORT STORIES

AHW HPB HINDI SERIES

Please visit:
www.hindpocketbooks.in

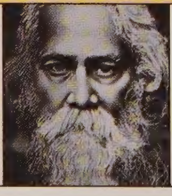

ISBN 978-81-216-0934-0

9 788121 609340

FP1211